श्रीभागवतचरित

(भूमिका)

दुरवगमात्मतत्त्वनिगमाय तवात्ततनोः,
चरितमहामृताब्धिपरिवर्तपरिश्रमणाः ।
न परिलपन्ति केचिदपवर्गमपीश्वर ते,
चरणसरोजहंसकुलसङ्गविसृष्टगृहाः ॥ *
(श्रीभा० १० स्क० ८७ अ० २१ श्लो०)

छप्पय

विमल भागवतचरित स्वयं श्रीहरिने गायौ ।
शुद्ध सनातन ज्ञान मनुजने नहीं बनायौ ॥
मुनिवर ! सोचें आपु मनुजका चरित बनावें ।
यह समाधिको चरित चलित चित कैसे ध्यावें ॥
हरि, अज, नारद, व्यास शुक, क्रम-क्रमतैं विस्तृत वन्यों ।
लिखनायौ प्रभु-दत्ततैं, भाषामें मैंने भन्यों ॥

---

* श्रीशुकदेवजी कह रहे हैं—"राजन् ! भगवान्‌की स्तुति करती हुई वेदकी श्रुतियाँ कह रही हैं—"हे ईश्वर ! आप जो शरीर धारण करते हैं, वह इसलिये कि आत्मतत्व अत्यंत दुर्बोध है उसका ज्ञान लोगोंको होजाय । ऐसे आपके चरित्ररूप महामृतसागरमें जो स्नानकरलेते हैं वे श्रम रहित होजाते हैं ऐसे जो विरले भक्तजन है वे मुक्तिकी भी इच्छा नहीं रखते । वे लोग आपके चरणकमलोंका हंसके समान सेवन करने-वाले भक्तोंके संगसे अपने पूर्वप्राप्त घर वारका भी परित्याग कर देते हैं ।

छप्पय, दोहा, सोरठा, स्तुति, भजन, पद तथा अन्यान्य छन्दोंमें जो नौसो पृष्ठसे अधिकका सुन्दर सचित्र सजिल्द भागवतचरित संकीर्तन-भवनसे प्रकाशित हुआ है, आजकी भूमिकामें मुझे उसीके सम्बन्धमे बताना है, उसीका संक्षिप्त इतिहास सुनाना है, उसीका माहात्म्य गाना है उसीका पुण्य परिचय पाठकोंको कराना है। आप कहेंगे, कि यह तो विज्ञापन है आत्म प्रशंसा है। पासमें पैसा हो चाहें जैसी अंट संट पुस्तक छपा दो इसका इतिहास क्या बताना, इसके विषयमें विशेष क्या बताना, कोई भगवान्‌की बात बताओ भक्त और भगवान्‌का गुण गाओ।

बात तो सत्य है, विज्ञापन तो है ही, इस विज्ञापनमे आत्मप्रशंसासे बच सकें, सोभी बात नहीं। आत्मप्रशंसाको शास्त्रकारोंने मृत्युके तुल्य बताया है यह भी पता है, फिर भी इस कथनमें एक लोभ है, इस इतिहासमें पग पगपर प्रभु-कृपाकी अनुभूति है उस अनुभूतिसे पाठकोंको अवश्य ही स्फूर्ति होगी वे भगवत्कृपाके महत्त्वको समझेंगे। मेरे विषयमें जो होता हो वह होता रहे। मैं तो किसीका यन्त्र हूँ, यन्त्री जो कराता है, करताहूँ, बतानेवाला जो बताता है जो संकेत करता है उसे लिखताहूँ। अब वह जाने उसका काम जाने।

सूत्रपात

बाल्यकालसे ही ब्रजमंडलमें जन्म होनेसे तथा परम्परागत संस्कारोंके कारण श्रीकृष्णने मेरे मनपर अपना सिक्का जमा दिया बाल्यकालमें जब मैं पाँच सात ही वर्षका हूँगा न जाने कहाँसे टेढ़ी टाँगवाली मुरलीमनोहरकी ताम्रमयी मूर्ति मेरी पूजामें आगयी। छोटी-सी वह सलोनी मनहारिणी मूर्ति कितनी दिव्य थी, अब भी वह छटा मेरे मनसे नहीं हटती। श्रीकृष्णके सम्बन्धकी कितनी ही कविताएँ मैंने कंठस्थ

करली थीं उनमें रसिक रसखानकी सवैयाँ मुझे अत्यन्त प्रिय थीं पीछे मैंने उनका संग्रह करके "रसखानपदावली" के नामसे टिप्पणी सहित छपाया भी था। स्यात् प्रयागके हिन्दीप्रेससे वह पुस्तक अब भी मिलती है।

श्रीतुलसीकृत रामायणको देखकर बाल्यकालसे ही मेरी ऐसी इच्छा थी, कि इसी प्रकार यदि ब्रजभाषाके पद्योंमें श्रीभागवत भी निकल जाय तो श्रीकृष्ण उपासकोंके लिये एक सर्वोत्तम पाठ्य पुस्तक मिल जाय। श्रीसूरदासजीका सूरसागर श्रीमद्भागवतके ही आधारपर लिखा गया है, किन्तु वह गायन ग्रन्थ है, क्लिष्ट है सर्व साधारणके लिये वह नित्यपाठके उपयोगी नहीं और ब्रजके रसिकोंके जो लीलाग्रंथ हैं, उनमें इतना अधिक मधुर रस है, कि अज्ञ लोग उसमें अश्लीलताका आरोप करते हैं, किन्तु यह उनकी भूल है, श्रीकृष्णावतार मधुर लीलाओंके ही लिये हुए हैं। श्रीरामावतार मर्यादा पुरुषोत्तम अवतार है और श्रीकृष्ण साकार मधुर रसके रसावतार हैं, फिर भी आवश्यकतासे अधिक मीठा होनेसे मुँह भर जाता है और जिन्हें मीठा खानेका अभ्यास नहीं उन्हें अधिक मीठेसे अरुचि होजाती है। ब्रजके वीतराग रसिकोंने जो बानियाँ लिखी हैं उसमें इतना अधिक मीठा डाल दिया है, कि सर्व साधारण तो उसे पचा भी नहीं सकते अतः वे बानियाँ उच्चकोटिके भागवतोंकी निधि हैं हम जैसे साधारण लोगोंका तो उन्हें पढ़नेका भी अधिकार नहीं।

श्रीमद्भागवत रसार्णव है, रसका इसमें सर्वत्र प्रवाह बहाया गया है। सभी रस इसमें अपने अपने स्थानपर उत्कृष्ट हैं, किन्तु मधुर रस तो षोडश कलाओंसे इसमें विकसित हुआ है। इतना सब होनेपर भी लोक मर्यादाका

निर्वाह किया है। अर्थात् मर्यादाके बाहर उसे नहीं जाने देनेका प्रयास किया है। यद्यपि मधुरभावका रस समुद्र जब उमड़ता है तब वह तटोंका संकोच नहीं करता सब बन्धनोंको छिन्न भिन्न कर देता है फिर भी भगवान् व्यासने उसे बहुत सम्हाला है अधिकाधिक मर्यादामें रखा है। मेरी आन्तरिक इच्छा थी कि इसी पद्धतिका अनुसरण करके व्रजभाषामें एक पद्य भागवत हो। यह तो मैं कभी स्वप्नमें भी सोच ही नहीं सकता था, कि भगवान् मेरे इस कामको मेरे द्वारा सम्पन्न करावें। क्यों कि एक तो मैं विशेष पढ़ा लिखा भी नहीं, दूसरे जो भी आज तक मैंने लिखा है गद्यमें लिखा है। पद्यका तो आज तक मैंने कोई ग्रंथ ही नहीं लिखा।

जब 'भागवती कथा' लिखनेकी प्रभुप्रेरणा हुई, तो आरम्भके दिन श्रीगणेश करनेकेलिए मैंने निम्न छप्पय लिखी—

श्रीनारायण विमल विशालापुरी निवासी।
नर नारायण ऋषी तपस्वी अज अविनासी॥
माता वीणापाणि सरसुती वाणी देवी।
कियो वेदको व्यास परासर सुत गिरि सेवी॥
धरि सिर सबके पादकी, पावन पुण्य पराग अति।
भनूँ भागवत-भव्य भव-भयहर भाषा यथामति॥

छप्पय स्वतः बन गयी मानों किसीने बतादी हो, इसके लिये कुछ भी प्रयास न करना पड़ा। विशेष काट छाँट भी न करनी पड़ी। ज्यों ज्यों उसे पढ़ते त्यों त्यों वह अत्यन्त ही सुन्दर प्रतीत हुई। अपने हाथकी बनी रोटी जली भुनी, कची पकी कैसी भी हो वह भी स्वादिष्ट

लगती है, क्यों कि उसमें अपनापन जो है। इसी प्रकार अपनी बनायी कविता चाहे, अशुद्ध अथवा नीरस ही क्यों न हो बड़ी अच्छी लगती है—

'निज कवित्त केहि लाग न नीका'

इस एक छप्पय! लिखनेसे ही बड़ा साहस हुआ और ऐसी प्रेरणा हुई, कि प्रत्येक अध्यायके आदि अन्तमें एक कविता रहा करे, आदिमें तो छप्पय रहे अन्तमें दोहा सोरठा कुछ भी रहे। ऐसे दो चार अध्याय लिखे एक अध्यायके अन्तमें दोहा भी लिखा अन्तमें निश्चय यही रहा कि आदि अन्तमें छप्पय ही रहा करें। अब छप्पयोंका क्रम आरम्भ हुआ। एक अध्याय लिख लेनेके अनंतर दो छप्पय लिखी जातीं, एक तो उस अध्यायके अंतकी और एक आगेके अध्यायकी। जब आगेका अध्याय समाप्त हो जाता तो फिर दो लिखी जातीं। इस प्रकार अध्यायके आदि अन्तमें छप्पय लिखी जाने लगीं। कुछ लिखनेके अनन्तर केवल छप्पयोंको ही पढ़ा गया, तो वे परस्परमें सम्बन्धित पायीं गयां। केवल छप्पय ही छप्पय पढ़ते जाओ तो सम्पूर्ण कथाका क्रम लग जायगा। सम्पूर्ण अध्यायका सार उन दो छप्पयोंमें भली प्रकार आ जाता था। अब तक इसके लिये कुछ प्रयास नहीं किया गया था, उधर ध्यान भी नहीं दिया था। जब देखा यह तो एक स्वतन्त्र नया ग्रन्थ ही अपने आप बन रहा है, तो इधर ध्यान भी आकर्षित होने लगा और इस बातकी सतर्कता बरती जाने लगी कि छप्पय सब क्रम बद्ध हों। इस प्रकार बिना प्रयासके स्वतः ही यह भाषा छन्दोंमें भागवत बनने लगी।

छप्पय ब्रज भाषाकी विशिष्ट छन्द है, अन्य भाषाओंमें भी छप्पय छन्द लिखी जाती है। चार पद रोला छन्दके दो

पद उल्लाला छंदके—'इस प्रकार छै पद मिलनेसे छप्पय छन्द हो जाता है। रोला और उल्लाला ये दो छन्द पृथक् पृथक् भी लिखे जाते हैं दोनों मिलनेपर छप्पय कहलाते हैं। व्रज भाषाके अनेक कवियोंने छप्पय छन्दोंमें ही काव्य किया है। परम भगवत् भक्त श्रीनाभाजीकी 'भक्त माल' छप्पय छन्दोंमें ही है। परम रसिक नन्ददासजीका रासपंचाध्यायी रोला छंदोंमें है।

इनके अतिरिक्त श्रीभगवत्‌रसिक, सहचरीशरण तथा प्रायः सभी व्रजके रसिकोंने इस छप्पय छन्दको अपनाया है। व्रज रसकी यह सिद्ध छन्द है और सभी राग रागनियोंमें यह उत्तमताके साथ गाई जा सकती है। भागवती कथा तो हिन्दीमें लिखी जाने लगी और भागवत सार इन छप्पयोंमें व्रज भाषामें लिखा जाने लगा। भाषामें तो समय समयपर परिवर्तन होता ही रहता है। इसी नियमानुसार प्राचीनव्रज-भाषासे इसमें कुछ भिन्नता स्वाभाविक ही है और आवश्कता-नुसार अन्य प्रान्तीय बोलियोंके शब्द भी इसमें आ ही गये हैं।

छपाईकी कथा

जब भागवती कथाके १५। २० अङ्क निकल गये और दशमस्कन्धकी लीलायें लिख गयीं, तब इच्छा हुई कि समस्त छप्पयोंको संग्रह करके नित्य पाठके लिये इसे पृथक् छपा दिया जाय, किन्तु यह कार्य था द्रव्यसाध्य। भागवती कथाका ही कार्य अत्यंत संकोचसे 'थर गतिसे हो रहा है, यह कैसे हो। फिर सोचा—' जिनका काम है, वे स्वयं ही कुछ प्रबन्ध करेंगे। इससे सन्तोष करके बैठ गये। जीवनमें भगवान्‌का अवलम्ब कितना भारी अवलम्ब है। जीव जितनी चिन्ता करता है, भगवान्‌को भूलकर ही करता है। जिसे

जितना ही अपने कर्तृत्वका अभिमान होगा उसे उतनी ही अधिक चिंता होगी। जो सब काममें भगवानका हाथ देखते हैं, वे बड़ीसे बड़ी विपत्ति आनेपर भी चिंतित नहीं होते। हम जब भगवान्‌की महत्ताको विसारकर अपनेको ही कर्ता मान लेते हैं तभी हमे चिंता होती है। इसी लिये भगवान् हमें अभावका दिग्दर्शन कराके पुनः पुनः सचेत करते रहते हैं। यह उनकी परम अनुग्रह है। यदि वे हमें अभावके दर्शन न करावें, तो हम श्रीमदान्ध होकर उन्हे भूल जायँ। इसीलिये जिन्हे अपनाते हैं उन्हें स्वयं ही निष्किञ्चन बना लेते हैं। भगवान् किस प्रकार छोटी छोटी बातोंका भी स्वयं ध्यान रखते हैं, इसके जीवनमें अनत अनुभव हैं, उन्हीं कृपाकी बातोंका स्मरणकर करके तो हम जी रहे हैं, उनका विज्ञापन करना उनके महत्त्वको घटाना है, किन्तु भागवत चरितके सम्बन्धमें जो उन्होंने पग पगपर अपनी कृपा दिखायी है उसका तो विज्ञापन करना ही है, इसमें आत्मप्रशंसा हो पाप हो, पुण्य हो सबका फल उन्हींके श्रीचरणोंमें समर्पित है।

हाँ, तो छप्पयोंका संग्रह मिश्र जी करते गये। उसी समय एक व्यक्तिने हमें ८। ९ रिम कागद भेज दिया। वैसे ही स्वतः ही विना किसी सूचनाके इसे हमने भगवत् आज्ञा ही समझी। चार पाँच फरमे छाप डाले। कागद बड़ा सुन्दर था। दो फरमे सुन्दर छपे फिर कुछ संशोधनकी भी ढील रही ३। ४ फरमे अशुद्ध भी छप गये। कागद चुक गया। छपाईका काम बन्द हो गया और लगभग एक वर्ष बन्द पड़ा रहा। हमने सोच लिया अभी इसके प्रकाशनका समय नहीं आया।

जीव जब तक चिंता करता है तब तक भगवान् निश्चित होकर बैठे बैठे हँसते रहते हैं। जब जीव अपनी चिंता छोड़कर निश्चित हो जाता है तब—भगवान्को चिंता व्यापती है। यह राँड़ चिंता भगवान्को भी नहीं छोड़ती। अब आप जानते ही हैं अपना जीवन चरित्र छपाना तो सभीको अच्छा लगता है। "स्तोत्रं कस्य न रोचते" अपनी स्तुति किसे प्यारी नहीं लगती। श्रीकृष्णको भी अपना चरित छपानेकी चटपटी लगी वे किसीके सिरपर सवार हुए। उसने छापना आरम्भकर दिया। कहते हैं जिनके ऊपर सवार हुए उन्हें भगवान्ने प्रत्यक्ष दर्शन दिये। अब दर्शन दिये या न दिये इसे तो भगवान् जाने या वे जाने हम तो सुनी सुनाई बात कहते हैं। भगवान्के यहाँ कोई नियम विधि विधान तो है ही नहीं कि इतना जप करो इतना तप करो तो दर्शन हो ही जायँगे। उन्हें दर्शन न देना हो लाखों वर्षके जपतपसे भी नहीं देते। देना हो तो एक गालीसे रीझ जाते हैं। अस्तु यह विवेचन तो बडा है इसपर तो कभी फिर स्वतन्त्र विचार होगा, यहाँ तो मुझे भागवत चरितका संक्षिप्त इतिहास सुनाना है। कहनेका सार यही कि भगवान्ने छपाई, कागद आदिका प्रबन्ध स्वतः ही करदिया मुझे इसके लिये कुछ भी प्रयास न करना पडा। पुस्तक छप गयी। हमें कितना हर्ष हुआ इसे शब्दोंमें हम व्यक्त नहीं करसकते।

अब तक ६०।७० पुस्तकें मेरे नामसे छप चुकी होंगी और अधिक भी हों, किन्तु जितनी प्रसन्नता इस "भागवतचरित" के छपनेपर हुई उतनी स्यात् ही किसीपर हुई हो। हमें ऐसी अंतःप्रेरणा हुई मानों यह श्रीमद्भागवतका भाषामें पुनः अवतरण हुआ है, इसलिये इस ग्रन्थको

वृद्धमानपुरसे प्रतिष्ठानपुर लाया जाय, इसलिये इसके उपलक्षमें एक महोत्सव मनाया जाय। हाँ, महोत्सव मनानेके पूर्व एक और भी विचित्र दैवी घटना घटित होगयी। उससे इस ग्रन्थका माहात्म्य सभीको प्रकट होगया। उसका उल्लेख कर देना आवश्यक है। नयी विचारधाराके लोग तो इसपर विश्वास संभवतया न करें, किन्तु वे न करें जो घटना हुई है उसे तो बता देना मैं आवश्यक समझता हूँ।

श्रीभागवतचरित सप्ताह श्रवणसे प्रेतमुक्ति।

भागवतचरित अभी पूरा छपा नहीं था, किन्तु कम्पोज होगया था। उसके अंतिमप्रूफ आरहे थे, एक दिन नित्य नियमानुसार मैं त्रिवेणीके बीचमें स्नान करके नौकामें चढ़ रहा था, कि उसी समय दो लड़के मेरे पास आये। उनमें एककी अवस्था १८, २० की होगी दूसरेकी २४, २५ की। छोटा कुछ सबल लम्बा हृष्ट पुष्ट और नवशिक्षित प्रतीत होता था, बड़ा लड़का ठिंगना सरल पुराने विचारका था। वह एक सफेद कुर्ता सफेद टोपी और सफेद धोती पहिने था। कंठमें तुलसीकी माला पड़ी थी, आँखें कुछ चढ़ी हुई थीं, मुखमंडलपर विषण्णता छायी थी, दोनोंने ही आकर मेरे पैर छूए।

मैंने अपने स्वभावानुसार हँसते हुए पूछा—"कहो, भैया! कैसे आये?"

उनमेंसे बड़ा बोला—"महाराज! हम आपके दर्शनोंके लिये आये हैं।"

मैंने कहा—"तुम मुझे कैसे जानते हो, तुमने मेरा नाम किससे सुना।"

उसने कहा—"महाराज! मैं आपका नाम बहुत दिनसे सुनता हूँ, आपके लेख आपकी पुस्तकें भी पढ़ीं। बहुत दिनोंसे आपके दर्शनोंकी इच्छा थी, संयोगकी बात अभी तक हो नहीं सके। इस समय एक प्रेतराज हमें आपके पास ले आये हैं।"

प्रेतराजका नाम सुनकर मैं चौंक पड़ा। प्रायः ऐसे लोग मेरे यहाँ अधिक आते हैं। कोई भगवान्के दर्शनोंकी या ऐसे ही भूत प्रेतकी अलौकिक घटना सुनाता है, तो मैं सब काम छोड़कर उस बातको बड़े चावसे सुनता हूँ। कुछ लोग झूठी भी बातें सुनाते होंगे, कुछ सच्ची भी किन्तु जो अचिन्त्य भाव हैं उन्हें तर्ककी कसौटीपर खरा खोटा नहीं बताया जा सकता। लोग बड़ी बड़ी विचित्र विचित्र बातें बताते हैं। हाँ, तो इनकी बातें सुननेको भी मैं बड़ा उत्सुक हुआ। मैंने पूजा पाठ बन्दकर दिया और कहा प्रेतराज तुम्हें यहाँ कैसे ले आया, यह सब वृतान्त मुझे सुनाओ।"

इसपर उसने कुछ वृतान्त मुझे वहाँ सुनाया कुछ आश्रममें आकर सुनाया, सबका सार मैं यहाँ पाठकोंको बताता हूँ।

उसने बताया–मैनपुरी जिलेमें भदान नामक एक गाँव है डाकखाना भदानमें ही है। हम जातिके सनाढ्य ब्राह्मण हैं। मेरा नाम रामसेवक शर्म्मा है। पिताका नाम पं० दर्शीलाल शर्मा है। हमारे पिता (पं० दर्शी लाल) पं० मदन-मोहनजीकी गोदी गये। मदनमोहनजीका स्त्रीका नाम गौरीदेवी था। उनके कोई संतान नहीं थी। १८ वर्षकी अवस्थामें मदनमोहनजीका देहात हुआ। उनकी सम्पत्ति के अधिकारी हमारे पिता हुए। हमारे पितामह पं० मदन

मोहन जीकी अकाल मृत्यु हुई। किसी भी कारणसे वे प्रेत हुए। पहिले पहिले वे हमारे माताके ऊपर आये। हमारे पिता (दर्शी लाल) भूत प्रेत आदिको नहीं मानते हैं, अतः उन्होंने इस बातपर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। कुछ कालके अनन्तर जब मेरी अवस्था १२ १४ वर्षकी थी एक दिन सहसा उन प्रेतराज (हमारे बाबा) का मेरे ऊपर आवेश हुआ। मैं अपने पिताका कभी नाम नहीं लेता था, किन्तु जब मुझपर उन प्रेतराजका आवेश हो गया तो मैं अपने पिताका आधा नाम लेकर बोला—"तू मेरे उद्धार का उपायकर नहीं मैं तेरा सर्वनाशकर दूँगा। मेरे निमित्त भागवत सप्ताह करा।" किंतु हमारे पिता तो भूत प्रेतको मानते ही नहीं थे। उन्होंने कह दिया –'मुझे इन बातोंपर तनिक भी विश्वास नहीं।"

अब तो उन प्रेतराजका समय समयपर आवेश होने लगा। उस समय मुझे शरीरका तनिक भी भान न रहता। जब आवेश उतर जाता तब शरीरकी सुधि आती। उस समय मैंने क्या कहा इसका भी मुझे स्मरण नहीं रहता। कोई इसे मृगी बताते कोई हृदयकी दुर्बलता, किन्तु मैं स्पष्ट जानता था कि यह प्रेतका आवेश है। इसी आवेशमें एक बार मैं गङ्गा किनारे किनारे राजघाट नरौराके पास नरवर पाठशालामें चला गया और वहाँके अध्यक्ष पं० दीवनदत्तजी ब्रह्मचारीजीकी सेवामें कुछ दिन रहा। मैंने अपनी दयनीय दशा उन्हें सुनायी और प्रेतराजकी श्रीमद्भागवतके सप्ताहकी आज्ञा सुनायी। सब सुनकर ब्रह्मचारीजीने कहा—" यहीं भागवतका सप्ताह कराओ। प्रेतके निमित्त सप्ताह तो कराना ही चाहिये।" किंतु ऐसा संयोग

हुआ कि सप्ताह हो ही नहीं सका, यहाँ मुझे नरौरा ग्रामके श्री अग्निहोत्रीजी महाराजके दर्शन हुए। अग्निहोत्रीजीके दो पुत्र हैं। अमृतलाल शास्त्री बड़े और वाचस्पति छोटे। अमृतलालका विवाह हो चुका था। वाचस्पति क्वारे थे। मेरी एक बहिन दीपशिखा देवी विवाह योग्य थी। संयोगकी बात अग्निहोत्रीजीसे प्रार्थनाकी गयी उन्होंने हमारी बहिनका सम्बन्ध स्वीकार कर लिया और वाचस्पतिजीके साथ हमारी बहिनका सम्बन्ध हो गया। यह सब हो गया, किंतु हम प्रेतराजके निमित्त सप्ताह न करा सके। अब तो प्रेत राजका आवेश मेरी बहिन दीपशिखा देवीपर भी वहाँ आने लगा और भाँति भाँतिकी हानि पहुँचाने लगा। अग्निहोत्रीजी भी भूत प्रेतके विरोधी थे, उनका कहना था, कि हमारे यहाँ नित्य अग्निहोत्र होता है यहाँ भूत प्रेतोंका क्या काम ? हमारी बहिनके जेठ अमृतलालकी स्त्रीपर भी आवेश होता और वे प्रेतराज भाँति भाँतिकी आज्ञा देते। वे बार बार भागवत सप्ताह करानेका आदेश देते किंतु हमारे पिता किसी प्रकार उसे स्वीकार नहीं करते। हमारी आर्थिक बहुत हानि होने लगी। बहुतसा लेन देन था, वह नष्ट हो गया, चूड़ियोंका कारखाना था वह भी समाप्त हो गया, खेती बारी भी नष्ट होने लगी लगभग ४०।५० हजारकी हानि हो गई और मैं तो पागलोंकी भाँति इधर उधर घूमता ही हूँ, जहाँ वे प्रेतराज ले जाते हैं, वहाँ जाता हूँ।

आजसे दो दिन पहिले प्रेतराजका फिर मेरे ऊपर बड़े वेगसे आवेश हुआ। उन्होंने मेरे पिताको सम्बोधन करके कहा—"दर्शी ! हमने बड़े क्लेश उठाये हैं, तुम लोगोंने हमारे उद्धारका कोई उपाय नहीं किया। अब यदि तू कुछ

करता है, तो कर नहीं मैं इस लड़केको मारडालूँगा पीछे तू इसकी तेरहीं तो करेगा ही। ऐसे ही मेरे लिये कुछ करदे। मुझे इस योनिमें बड़ा कष्ट है।"

फिर इसके पश्चात् उन प्रेतराजने अपना सब वृत्तान्त बताया कि मैं पूर्वजन्ममें बड़ा पंडित था प्रयागसे ८-१० कोशपर सोनापुर नामक मेरा गाँव था, हम दो भाई थे, मेरा नाम अरुणदेव शास्त्री और मेरे भाईका नाम शालिगराम था। मेरे दो लड़के और एक लड़की थी। एक लड़का तो तू (सेवकराम) है। दूसरा लड़का (नरवरके याज्ञिकजीका बड़ा लड़का सेवकरामकी बहिनका जेठ) अमृतलाल था। और लड़की सेवकरामकी बहिन है। मैंने बहुत धन पैदा किया, किन्तु कुछ भी सुकृत मुझसे नहीं हो सका तब मेरा जन्म मैंनपुरीके भदान गाँवमें हुआ। मेरे पास धन तो बहुत था, किन्तु उससे मैंने कुछ पुण्य-कर्म नहीं किया। वहाँ मेरी अकाल मृत्यु हुई और मुझे यह प्रेतयोनि प्राप्त हुई। इसमें मैं जलता रहता हूँ। अपने आप मैं कोई शुभ कर्म नहीं कर सकता। मेरे ऊपर बड़ा शासन रहता है। प्यास लगती है पानी नहीं पी सकता। हम परिवारवालोंसे ही आशा रखते हैं, वे कुछ हमारे लिये पुण्य करें तो मिल जाय, हमारा रूप बड़ा भयङ्कर है हम दूसरोंका अनिष्ट तो कर ही सकते हैं। मैं कबसे कह रहा हूँ, मेरे लिये भागवत सप्ताह करा दो। इससे मेरा उद्धार हो जायगा। तुम स्वयं नहीं करा सकते, तो मेरे साथ प्रयाग चलो। मैं अपने सप्ताहका सब प्रबन्ध करा लूँगा।"

उस लड़के सेवकरामने मुझसे कहा—"सो, महाराज! वे प्रेतराज ही मुझे यहाँ आपके पास ले आये हैं। हमारे

पिता तो अब भी नहीं मानते थे। यह मेरा छोटा भाई है आगरा कालेजमें पढ़ता है इसने कहा—"मैं आपके सा‍ प्रयाग चलूँगा, सो यह मेरे साथ आया है। अब आप जैसं आज्ञा दें।"

प्रेतकी कथा सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मैं कहा—"हमारे यहाँ तो वर्षमें कई सप्ताह हो जाते हैं, होते ही रहते हैं, तुम्हारे लिये भी करा देंगे। तुम कोई चिन्ता मत करो। हमारा भागवतचरित छप रहा है, उसकी कथा हम प्रेतराजको सुनवावेंगे और प्रातः मूलसंहिताका पाठ करावेंगे।" इतना आश्वासन देकर उन दोनोंको मैं आश्रम-पर ले आया। यह मार्गशीर्षके महीनेकी बात है और कृष्णपक्षकी। निश्चय हुआ मार्गशीर्ष शुक्लपक्षमें यहीं सप्ताह हो। प्रातःकाल मूलसंहिता पाठ हो सायंकालको भागवत-चरितकी कथा हो।" ऐसा निश्चय होनेपर वे दोनों भाई सप्ताहके लिये अपने परिवार वालोंको बुलाने अपने गाँव चले गये।

प्रेतयोनि पापका परिणाम है। मनुष्य लोभवश पाप तो कर डालता है, किन्तु उसकी अन्तरात्मा उसे टोंचती रहती है। मरनेपर जीवात्मा तो मरता नहीं। प्रेतयोनि होनेपर संस्कार वे ही बने रहते हैं। उस समय सूक्ष्म देह होनेसे सूक्ष्मसे सूक्ष्म वासनायें उभड़ पड़ती हैं और वे बड़ी पीड़ा देती हैं। मेरे पास सभी प्रकारके लोग आते हैं और अपने गुप्तसे गुप्त पाप बताते हैं। अभी कल ही एक व्यक्ति आया उसने बताया—*महाराज! मेरा मन एक स्थानमें फँस गया है।* मुझे बड़ा कष्ट है मेरी इच्छा पूरी होगी या नहीं?" जब मैंने उसका परिचय पूछा तब उसने बताया मेरी वह एक सम्बन्धिनी है। मैंने उसे बहुत समझाया; अरे! वह तो तेरी

पुत्रीके सदृश है। हमने कहा—"तो आप मेरे मनको फेर दीजिये। जिससे उसका मुझे स्मरण न आवे।"

वह व्यक्ति अत्यन्त अधीर हो रहा था। विवाहित था भले घरका था। उसका शरीर मूर्तिमान वेदना बना हुआ था। उसे कोई शारीरिक कष्ट नहीं था, मानसिक विकार था उसीमें घुला जा रहा था। इस समय तो उसमें इतनी सामर्थ्य है, कि बलात्कार भी कर सकता है। वही मरकर यदि प्रेत हो जाय, तो उसकी वासना तो इससे भी अधिक तीव्र होगी, किन्तु वह कुछ कर्म नहीं कर सकेगा। उस समय उसके परिवारवाले उसके निमित्त कुछ पुण्य करें तो वही काम आ सकता है। पुराणोंमें ऐसी भी बहुत कथाएँ हैं। बंगालके सुप्रसिद्ध सन्त श्रीविजयकृष्णजी गोस्वामीके जीवनचरित्रमें भी एक ऐसी ही कथाका उल्लेख मिलता है; वह इस प्रकार है।

गोस्वामीजी जब वृन्दावनमें रहते थे तो प्रायः श्रीवृन्दावनजीकी परिक्रमा किया करते थे। एक दिन वे परिक्रमा कर रहे थे, कि उन्हें अपने सम्मुख एक व्यक्ति माला झोलीमें हाथ डाले जप करता हुआ अपने आगे आगे दिखायी दिया। तनिक वे आगे बढ़े, कि वह नहीं दिखायी दिया। कुछ आगे बढ़कर फिर उसकी छाया दिखायी दी। अब तो वे समझ गये, कि यह कोई प्रेत योनिका व्यक्ति है। आगे चलकर उन्होंने उसपर मंत्र पढ़कर जल छिड़का और पूछा—"भाई! तुम कौन हो?"

उसने कहा—"महाराज! मैं एक प्रेत हूँ।"

गोस्वामीजीने पूछा—"भैया! तुम किस पापके कारण प्रेत हुए?"

उसने कहा—" महाराज ! मैं अमुक मन्दिरमें पुजारी था। ठाकुरजीके रुपये चुराकर मैंने अमुक स्थानमें गाड़ दिये, इसीसे मैं प्रेतहोगया।"

गोस्वामीजीने कहा—" भैया ! तुम तो भगवन्नामका जप कर रहे हो, श्रीवृन्दावन धामकी परिक्रमा कर रहे हो। एक नामसे अनन्त पाप कट जाते हैं।'

उसने कहा—"महाराज ! थैलीमें हाथ डालकर जप करते रहना, परिक्रमा करना यह मेरा स्वभाव था। वह स्वभाव मेरा अब भी नहीं छूटा है, इन कामोंने मनको इतना स्पर्श नहीं किया, जितना भगवान्‌के धन चुरानेके पापने मनको स्पर्श किया। यदि उस पापका प्रायश्चित्त हो जाय, तो मेरी प्रेत योनि छूट जाय।"

गोस्वामीजीने कहा—" भैया ! तुम इसका प्रायश्चित्त भी बताओ, जिससे तुम इस प्रेत योनिसे छूट जाओ। मेरे करने योग्य होगा, तो मैं उसका प्रबन्ध करूँगा।"

उसने कहा—" महाराज ! अमुक स्थानपर मेरे रुपये रखें हैं। उन्हें निकलवाकर मेरे निमित्त एक श्रीमद्भागवत का सप्ताह करा दें, साधु ब्राह्मणोंका भंडारा करा दें, तो मैं प्रेत योनिसे छूट जाऊँ।"

गोस्वामीजीने अपने शिष्य सेवकोंसे कहकर उसके धनसे भंडारा आदि करा दिया, वह प्रेत योनिसे छूट गया।"

धनका उपयोग यह नहीं है, कि उसे जोड़ जोड़कर रख जायें। इस जन्ममें भी सदा जोड़नेमें रक्षा करनेमें कष्ट उठावें और मरकर सर्प होकर उसपर बैठें या प्रेत होकर उसीका चिन्तन करें। हमारी जन्म भूमिके पासमें

एक जाटोंका बहुत पुराने किलेका खेड़ा था। जब हम बहुत छोटे थे, तो सुना करते थे कि दिवालीके दिन उस खेड़ेके भीतरसे माया चिल्लाती है—"जिसे मुझे लेना हो वह अपना जेठा पुत्र नीला साँड़ एक बोरी उड़द चढ़ा जाओ और मुझे ले जाओ।" अपने जेठे पुत्रको और नीले साँड़को कौन चढ़ावे, इसलिये कोई मायाको लेता नहीं है। हमने तो मायाकी यह बात अपने कानोंसे सुनी नहीं, किन्तु बड़ोंके मुखसे ऐसा सुनते आये हैं। यह तो प्रत्यक्ष है, माया सबको नहीं मिलती। बिहारमें गदरके नेता कुमारसिंहके यहाँ सुवर्ण मुद्राओंसे भरे बहुत-से कलश थे। पीछे लोगोंने उन्हें निकालना चाहा तो वे कलश बड़ी तेजीसे वहाँसे भागे और वहाँसे कई मीलकी दूरीपर गङ्गाजी थी उसमें आकर विलीन हो गये। इसी धनसे जितना धर्म स्वयं कर ले। पीछे कौन करता है। वासना शेष रह जाती हैं वे नाना योनियोंमें कष्ट देती हैं।

हाँ, तो मार्गशीर्ष शुक्लपक्षमें सेवकराम अपने माता पिता, बहिन बूआ बहनोई (वाचस्पति) और अमृतलाल के साथ सप्ताह कराने यहाँ आगया। सब मिलाकर १० १५ आदमी होंगे। अमृतलाल शास्त्री जो खुरजेके सुप्रसिद्ध व्यापारी सूरजमल बाबूलाल जाटियाके यहाँ पूजा पाठ करते हैं और सेवकरामके बहनोईके बड़े भाई हैं और पूर्व जन्ममें जो दोनों सगे भाई थे, उन्होंने ही सप्ताह बाँची। प्रातः काल पाठ करते। सायंकालको भागवत चरित की कथा करते।

पहिले दिन सेवकरामकी बहिनपर प्रेतराजका आवेश हुआ। उन्होंने बताया—"भैया! तुम बहुत अच्छी जगह

आगये हो महाराजजीके यहाँ मेरा उद्धार हो जायगा। तुम ऐसे ही मुझे सुनाओ।"

सात दिन सप्ताह हुआ। पूर्णिमाके दिन अवभृत स्नान करने त्रिवेणीजीमें गये, तो वहाँ त्रिवेणीजीके बीचमें श्री सेवकरामकी माताके ऊपर आवेश हुआ और प्रेतराजने कहा—" भैया ! तुम लोगोंने मेरा उद्धार कर दिया, मेरी प्रेत योनिसे मुक्ति हो गई। अब मैं वैकुन्ठको जाता हूँ।" यह कहकर वे चले गये।"

यहाँ इस कथाके कहनेका अभिप्राय इतना ही है, कि सर्वप्रथम (जब तक भागवत चरित पूरा छपा भी नहीं था। केवल प्रूफोंसे) एक प्रेतराजने इसे सप्ताह क्रमसे सुना और उसकी मुक्ति भी हुई बतायी जाती है। प्रयाग जिलेका मानचित्र मँगाकर प्रयागके दक्षिणके गाँव मैंने देखे उनमें सोनपुर या सोनापुर कोई गाँव नहीं मिला। हाँ मानपुर मिला। संभव है आनापुर हो आनापुर तो रियासत है और वह प्रायः संगमसे पश्चिम ही है। इस विषयमें और कुछ विशेष जान पड़ा तो फिर उसकी सूचना दी जायगी।

हाँ, तो अब आगेका प्रसंग सुनिये। किस प्रकार "भागवत चरित" को बहुमान पुरस्सर प्रतिष्ठानपुर लाया

"श्रीभागवत-चरित महोत्सव"

उत्सवका नाम सुनते ही आश्रममें तथा नगरमें एक प्रकारका अभूत पूर्व उत्साह फैल गया। निश्चय हुआ कि कमसे कम सौ मोटरें माँगी जावें और पचीस बड़ी लारियाँ। लारियोंमें प्रयाग नगरकी समस्त संकीर्तन मंडलियाँ रहें, उनमें ध्वनि पूरक यन्त्र (लाउडस्पीकर) लगे रहें। मोटरोंमें विशिष्ट विशिष्ट व्यक्ति बैठे रहें या शोभाके लिये खाली चलें शेष लोग संकीर्तन करते हुए त्रिवेणी तक सवारीको ले चलें। वहाँ सभा होकर झूसीमें आकर उस दिनका समारोह समाप्त हो। इसके लिये एक समिति बना दी गयी। पंडित मूलचन्दजी मालवीय उसके अध्यक्ष हुए और लीडर प्रेसके प्रधान व्यवस्थापक श्रीबिन्दा प्रसादजी ठाकुर प्रधान मंत्री हुए। स्वरूपरानीपार्क (जीरोरोड) पर उद्घाटन समारोह रखा गया। निश्चय यह हुआ कि ब्रह्मावर्त (बिठुरके) सुप्रसिद्ध सन्त श्रीसरकार स्वामी (पं० रामवल्लभा शरणजी महाराजके) कर कमलोंसे उद्घाटन कराया जाय।

माघ कृष्ण पंचमी रविवार (सं० २००७) को मध्याह्नके समय कानपुरसे ५० | ६० भक्तोंके साथ श्रीसरकार स्वामी पधारे। विशिष्ट विशिष्ट व्यक्तियोंने स्टेशनपर उनका स्वागत किया। सम्मानके सहित वे सभा मंडपमें लाये गये। अग्रवाल सेवा समितके स्वयंसेवकोंने तथा विभिन्न विद्यालयोंके छात्रोंने उनके सम्मानार्थ अभिवादन किया और वेद घोषके साथ उन्हें मंचपर लीलास्वरूपोंके समीप बैठाया गया। उन्हींके करकमलों द्वारा नवीन भागवत चरितका पूजन हुआ। जिस समय वेदपाठी ब्राह्मण सस्वर वेदपाठ कर रहे थे, उस समय वहाँ धर्म साकार रूपमें दृष्टिगोचर होता था

जनताकी अपार भीड थी । पूजनके अनंतर सरकारस्वामीने कुछ काल कीर्तन किया, फिर होने लगी सवारीकी तैयारी।

सवारी

कितनी लारियाँ थीं, कितनी मोटरें थी इसकी गणना करनेका अवसर किसे था । श्रीगजाधर प्रसाद भार्गव, मालवीयजी, रामकृष्णशास्त्रीजी, ठाकुर साहब तथा अनान्य महानुभाव लारियोंमें मंडलियोंको बिठा रहे थे । एक ओर लारियोंका ताँता लगा था, एक ओर दूर तक मोटरें ही मोटरें खडी थी । एक मोटरपर श्रीभागवत चरितकी सवारी थी । आगे आगे हम सब लोग सकीर्तन करते हुए चल रहे थे । पीछे लारियोंमें समस्त मडलियाँ अपनी अपनी ध्वनिमें सकीर्तन कर रही थीं । सम्पूर्ण शहरके नर नारी उमड़ पड़े थे। उस समय सर्वत्र शान्तिका वातावरण छा गया था । अटा, अटारियाँ, आखा, मोखा, भरोखा, सभीमें से नारियाँ निहार रही थी । संकीर्तनकी तुमुल ध्वनि वायु मडलमें व्याप्त होकर समस्त अशुभोंका निराकरण कर रही थी । उस समयका दृश्य अभूतपूर्व था । सभी लोग कह रहे थे। इतना बड़ा धार्मिक जुलूस आज तक नहीं निकला सड़कपर मीलों लंबी मोटर लारियों तथा स्त्री पुरुषोंकी भीड़ ही भीड़ दिखायी देती थी । बड़े बड़े रईस उनकी स्त्रियाँ सब आनन्दमें विभोर हुए, संकीर्तनके प्रवाहमें बहे हुए पैदल ही चल रहे थे । इसके कुछ दिन पूर्व ही मेरा पैर टूट गया था, किन्तु मुझे पैरकी सुधि ही नहीं थी । सर्वप्रथम इतना पैदल चला था । इस प्रकार नगर कीर्तन

होता हुआ। संकीर्तन दल त्रिवेणी बाँधपर आया। वहाँ जैसा अपूर्व दृश्य हुआ उसे वर्णन करनेकी लेखनीमें शक्ति नहीं। देखनेसे ही हो सकता था। उसका अनुभव तो

अपूर्व सम्मिलन

जब सवारी बाँधसे नीचे उतरी तो खाक चौकके समस्त वैरागी वैष्णव अपने झंडी निशानोंको लेकर सवारीका स्वागत करने आये। अहा! वह कैसी अपूर्व छटा थी। सैकड़ों महात्मागण जटा बाँधे सम्पूर्ण शरीरपर भस्म लगाये, जय सियाराम, जय सियारामका, सुललित कीर्तन करते हुए गाजे बाजेके साथ उधरसे आये। इधरसे नगरके समस्त नर नारी कीर्तन करते हुए पहुँचे। गङ्गा यमुनाका-सा संगम हो गया। भरत मिलापका दृश्य प्रत्यक्ष दिखायी देने लगा। मेरे नेत्रोंमें जलभर आया। भूमिमें लोटकर झंडे निशान तथा समस्त संत मंडलीको साष्टाग प्रणाम किया। सम्पूर्ण मेला वटुर आया था। कुंभका-सादृश्य हो गया। बिना ठेले कोई निकल ही नहीं सकता था। संतोंको आगे करके सवारी संगमकी ओर बढ़ी। आगे चलकर देखा पंडाल खचाखच भरा है अतः सबको साथ लेकर सीधे संगम गये। वहाँ माधव जीका पूजन किया। भागवत चरित संगम राजको अर्पण किया। लौट कर पंडालमें आये। महामहोपाध्याप पं०उमेश मिश्र, मालवीय जी- स्वामी चक्रपाणीजी तथा भक्तमालीजी आदिके भाषण हुए। सभा समाप्त होनेपर सब झूसी आये इस प्रकार बड़े सम्मानके साथ हम माघ कृष्णपंचमीके दिन 'श्री भागवत चरित को झूसी लाये।

पाक्षिक पारायण

माघ भर "श्रीभागवती चरित महोत्सव" मनाया गया। श्री सरकार स्वामी एक महीने संकीर्तन भवनमें अपने कुछ शिष्यों तथा भक्तोंके सहित बिराजे। नित्य ही आप विनय पत्रिकाकी सरस संगीतमय कथा कहते। इसी समय पं०कृष्ण कुमारजी मिश्रने बाजे तबलेपर श्री भागवत चरित का पाक्षिक पारायण किया। जो सभी लोगोंको अत्यंत रुचिकर हुआ।

एकाह पारायण

कुछ बच्चियोंने मिलकर माघकी एकादशीके दिन भागवत चरित, का अखंड एकाह पाठ किया। एक दिनमें पारी पारीसे सभीने उसे समाप्त किया। उसमें बीस घंटेके लगभग लगे। अब वे प्रायः प्रत्येक एकादशीको अखंड एकाह पाठ करती हैं, जिसमें १८-१९ घंटे लगते हैं।

श्रीत्रिवेंणी जीमें सप्ताह पाठ

जब श्रीद्वारका जानेका संकल्प उठा और न जा सके तभी संकल्प किया था, कि श्रीवेंणीजीको श्री भागवत सप्ताह सुनाया जाय। जब भागवत चरित छपने लगा तब सोचा छप जानेपर भागवत चरितको भी त्रिवेंणीजीको सुनाना है। जब माघमें छप गया और भागवत चरित भी समाप्त हो गया, तब फाल्गुन शुक्लपक्षमें त्रिवेंणीसे सुनानेका निश्चय हुआ। पहिले विचार यह था, कि जो सात दिन [illegible] केवल जलपर रहकर त्रिवेंणीजीके बीचमें [illegible] सुने उ[illegible] को सम्मिलित किया जाय, अन्य किसी [illegible]

सूचना किसीको भी नहीं दी गयी और बहुत निजी रूपसे सुननेका निश्चय हुआ। पीछे यह भी छूट देदी गयी, कि दिन भर कुछ न खाकर जो रात्रिमें फलाहारपर रहें वे भी सुनें। पहिले दो दिन तो १०। २० आदमी ही सम्मिलित हुए। बीच त्रिवेणीमें चौकियाँ लगाकर नौकाके ऊपर फाल्गुन शुक्ला-सप्तमीसे आरम्भ हुआ। प्रातःकाल पं० ब्रजकिशोरजी मिश्र संहिता करते और मध्याह्नोत्तर उनके बड़े भाई पं० कृष्णकुमार मिश्र बाजे तबलेपर 'श्रीभागवतचरित' का पाठ करते। शनैः शनैः लोगोंको पता लगने लगा और अंतके ३-४ दिन तो बड़ी भीड़ हो गयी। चतुर्दशीके दिन रात्रिको बारह बजे बिना किसी विघ्न बाधाके सप्ताह समाप्त हुआ। त्रिवेणीके बीचमें निराहार रहकर एकाग्र चित्तसे सप्ताह सुननेमें जो आनन्द आया उसे सुननेवाले ही जानते हैं। दूसरे उसका अनुमान भी नहीं कर सकते। इस प्रकार श्री त्रिवेणीजीने भी श्रीभागवतचरितके सप्ताह-को उल्लासके साथ श्रवण किया। श्रोताओंपर श्रीत्रिवेणी-जीने कितनी कृपा प्रदर्शित की, किस प्रकार सात दिन अपनी अनुग्रहका वरद हस्त रखकर पालन पोषण अनुप्रीणन तथा लालन किया, ये सब कहनेकी बातें नहीं।

इस प्रकार इस ग्रन्थका एकाह, सप्ताह तथा पाक्षिक पाठ हुए। बहुतसे लोग नित्य नियमसे सप्ताह पाक्षिक तथा मासिक पाठ करने लगे हैं। इस प्रकार मेरी पुरानी इच्छा तो पूर्ण हुई अब इसे सर्व साधारण जनता अप-नाती है या नहीं, यह बात तो भविष्यके गर्भमें छिपी है,

इसे तो वे ही भगवान् जान सकते हैं, जिनका यह चरित है। मानवबुद्धि क्षुद्र है, सीमित है, वह तो थोड़ेको बहुत समझ लेता है और बहुतको थोड़ा। भगवान्का दास जिसमें अपना हित समझता है, यदि उसमें उसका हित नहीं होता, तो भगवान् उसे वह वस्तु नहीं देते। जिसमें दासका हित और उसे वह अहितकर भी प्रतीत हो तो भगवान् उसे देते हैं। भगवान् अपने दासोंकी सदा सुधि रखते हैं। इसलिये हे प्रभो! मेरा जिसमें हित हो वह करें। मैं मान प्रतिष्ठा और नामके चक्करमें फँसकर तुम्हे न भूल जाऊँ। जो भी कर्म करूँ तुम्हारी प्रीतिके लिये ही करू। भागवतचरितमें जो भी मेरा अहंभाव हो उसे भ आप लेलें। मैं देना भी न चाहूँ तो बल-पूर्वक छीन लें। इस प्रकार यह भूमिका तो समाप्त हो गयी, किन्तु बिना एक चटपटी कहानीके इति करदूँ तो मेरे पाठक असन्तुष्ट होंगे, इसलिये एक कहानी कहकर इस भूमिकाको समाप्त करूँगा।

बहुत पुरानी बात है, अयोध्या नगरीमें एक अम्बरीष नामके राजा रहते थे। ये अम्बरीष एकादशीवाले राजा अम्बरीषसे पृथक् थे। वे तो यमुना किनारेके राजा थे। ये अयोध्याके राजा थे। इनकी एक अत्यन्त ही सुन्दरी कन्या थी। उसका नाम था श्रीमती। उस समय संसारमें श्रीमतीके सौंदर्यकी सर्वत्र ख्याति थी। एक दिन श्रीनारदजी और पर्वत मुनि अयोध्याके राजाके समीप आये। श्रीमती

केसौंदर्यको देखकर दोनों ही मुनि मन्त्रमुग्ध-से बन गये । दोनोंकी ही इच्छा उससे विवाह करनेकी हुई । शीघ्रतासे नारद मुनिने राजासे कहा—"राजन् ! आपकी यह कन्या जैसी ही गुणवती है, वैसी ही रूपवती है । इसके हस्तकी रेखायें साक्षात् लक्ष्मीके सदृश हैं । आप इस कन्याका विवाह मेरे साथ कर दीजिये।"

राजा कुछ कहना ही चाहते थे, कि बीचमें ही बात काटकर पर्वत मुनि बोले—"राजन् ! आप पहिले मेरी भी बात सुनलें । सबसे पहिले मैंने आपकी कन्याको मनसे वरण कर लिया था, अतः मैं इसका प्रथम अधिकारी हूँ, इसलिये मेरे साथ इसका विवाह कर दें।"

दोनों तेजस्वी तपस्वी मुनियोंकी बात सुनकर राजा बड़े असमञ्जसमें पड़े । उन्होंने हाथ जोडकर कहा—"मुनियो, मैं आप दोनोंका सेवक हूँ, कन्या मेरे पास एक ही है, आप याचना करने वाले दो हैं । दोनों ही मेरे पूज्य हैं। आप दोनों मिलकर निर्णय करलें, मैं किसे कन्या दूँ।"

इसपर दोनों मुनियोंने कहा—"राजन् ! हम तो दोनों अर्थी हैं । हम दोनों ही इसपर तुले हुए हैं, कि यह कन्या-रत्न हमें मिले। हम दोनों कैसे निर्णय कर सकते हैं। आप राजा हैं, आप ही हममेंसे किसीको दे दें।"

राजाने कहा—"अच्छा, मैं एकको दे दूँ तो आप दूसरे बुरा तो मानेंगे ?"

पर्वत मुनिने कहा—"राजन ! यदि तुमने नारदको अपनी कन्या दो, तो मैं अभी आपको घोर शाप दे दूँगा।"

इसपर नारदजी भी बोले—"महाराज ! यदि आपने पर्वतको अपनी कन्या दी तो मैं भी आपको शाप दूँगा।"

राजाने कहा—'तब महाराज ! मैं आपमेसे किसी एकको कैसे कन्या दूँ ? हाँ, अच्छा एक बात है । मेरी कन्या युवती है उसे भले बुरेका विवेक है आप दोनोंमेसे वह जिसे वरण करले उसीको मैं उसे दे दूँगा।"

इस बातपर दोनों मुनि सहमत हो गये । एक तिथि निश्चित हुई कि अमुक दिन कन्या जिसे वरण करले उसीके साथ उसका विवाह हो । इस निर्णयसे ही प्रसन्न होकर चले गये ।"

जब मनुष्यका किसी वस्तुमें अत्यंत अभिनिवेश हो जाता है । तो उसे प्राप्त करनेके लिये वह उचित अनुचित सभी उपायोंको करता है। वह अपनी पूरी शक्ति लगाकर उसे प्राप्त करनेकी चेष्टा करता है । नारदजी ने सोचा—"कन्याने यदि मुझे वरण न किया, तो कन्यासे तो मैं वञ्चित हो ही जाऊँगा, संसारमें मेरी बड़ी हँसी होगी। इसलिये ऐसा पक्का उपाय कर लेना चाहिये, कि पर्वत मुनिको कन्या वरण ही न करे विष्णु भगवान् सर्व समर्थ हैं। उनकी मेरे ऊपर कृपा भी बहुत है, उनसे यदि सहायता ले ली जाय, तब तो मेरी विजय निश्चित ही है।" यही सब सोचकर वे चुपचाप वैकुण्ठकी ओर चल दिये।

भगवान् विष्णु सबके साथ सभामें विराजमान थे । नारदजीने जाकर लंबी डंडौत झुकाई।

नारदजीको देखते ही हँसते हुए भगवान् बोले—"आइये ! नारदजी ! आइये । कहिये कहाँ कहाँसे आये ? क्या समाचार हैं संसारके ? कोई नयी बात हो तो बताइये।"

नारदजीने संकोचके स्वरमें कहा—"नयी तो महाराज ! कुछ बात नहीं है । मैं आपके चरणोंमें एक निवेदन करना

चाहता हूँ।"

भगवान्ने उल्लासके साथ कहा—"हाँ हाँ, कहिये, क्या बात है ? जो आपको कहना हो निःसंकोच कहिये।"

नारदजीने कहा महाराज गुप्त बात है तनिक एकान्तमें पधारें तो निवेदन करूँ।"

भगवान्ने कहा—"हम यहीं एकान्त किये देते हैं।" यह कहकर लक्ष्मीजीको भीतर जानेको कह दिया और लोगोंको बाहर जानेकी आज्ञा दे दी। लक्ष्मीजी मुस्कराती हुई कड़े छड़े और नुपूरोंको झनझनाती हुई छम्म छम्म करके भीतर घुस गयीं।

एकान्त हो जानेपर नारदजीने आदिसे अन्त तक सब समाचार सुनाकर प्रार्थना की "भगवान् ! मैं चाहता यह हूँ, कि पर्वत मुनिका मुख आप बन्दरका कर दें।" यह सुनकर भगवान्ने प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा—"मुनिवर ! हम आपके हितका काम अवश्य करेंगे पर्वत मुनिका मुख बंदर का अवश्य हो जायगा।" यह सुनकर नारद मुनि प्रसन्न हुए चले गये।

पर्वत मुनिको या तो कि गुप्तचरसे समाचार मिल गया या उनके मनमें भी खटपटी लग रही थी, इसीलिये वे भी अपनी शिफारिस कराने वैकुंठको चल दिये। एकान्तमें जाकर उन्होंने भी भगवान्से सब बात कह दी और प्रार्थनाकी "आप नारदजीका मुख लंगूरका-सा बना दें।" यह सुन-कर हँसते हुए भगवान्ने कहा—"मुनिवर जिसमें आपका कल्याण होगा, उसको हम अवश्य करेंगे, नारदका मुख लंगूरका-सा हो जायगा।" यह सुनकर पर्वत मुनि प्रसन्नता प्रकट करते हुए प्रस्थान कर गये।

राजाने कहा—'तब महाराज ! मैं आपमेंसे किसी एकको कैसे कन्या दूँ ? हाँ, अच्छा एक बात है । मेरी कन्या युवती है उसे भले बुरेका विवेक है आप दोनोंमेंसे वह जिसे वरण करले उसीको मैं उसे दे दूँगा।"

इस बातपर दोनो मुनि सहमत हो गये । एक तिथि निश्चित हुई कि अमुक दिन कन्या जिसे वरण करले उसीके साथ उसका विवाह हो । इस निर्णयसे ही प्रसन्न होकर चले गये ।"

जब मनुष्यका किसी वस्तुमे अत्यंत अभिनिवेश हो जाता है । तो उसे प्राप्त करनेके लिये वह उचित अनुचित सभी उपायोंको करता है। वह अपनी पूरी शक्ति लगाकर उसे प्राप्त करनेकी चेष्टा करता है । नारदजी ने सोचा—"कन्याने यदि मुझे वरण न किया, तो कन्यासे तो मैं वञ्चित हो ही जाऊँगा, संसारमें मेरी बडी हँसी होगी। इसलिये ऐसा पक्का उपाय कर लेना चाहिये, कि पर्वत मुनिको कन्या वरण ही न करे विष्णु भगवान् सर्व समर्थ हैं। उनकी मेरे ऊपर कृपा भी बहुत हैं, उनसे यदि सहायता ले ली जाय, तब तो मेरी विजय निश्चित ही है।" यही सब सोचकर वे चुपचाप वैकुण्ठकी ओर चल दिये।

भगवान विष्णु सबके साथ सभामें विराजमान थे । नारदजीने जाकर लबी डंडौत झुकाई।

नारदजीको देखते ही हँसते हुए भगवान् बोले—"आइये ! नारदजी ! आइये । कहिये कहाँ कहाँसे आये ? क्या समाचार हैं ससारके ? कोई नयी बात हो तो बताइये।"

नारदजीने संकोचके स्वरमें कहा—"नयी तो महाराज ! कुछ बात नहीं है । मैं आपके चरणोंमें एक निवेदन करना

चाहता हूँ।"

भगवान्ने उल्लासके साथ कहा—"हाँ हाँ, कहिये, क्या बात है? जो आपको कहना हो निःसंकोच कहिये।"

नारदजीने कहा महाराज गुप्त बात है तनिक एकान्तमें पधारें तो निवेदन करूँ।"

भगवान्ने कहा—"हम यहीं एकान्त किये देते हैं।" यह कहकर लक्ष्मीजीको भीतर जानेको कह किया और लोगोंको बाहर जानेकी आज्ञा दे दी। लक्ष्मीजी मुस्कराती हुईं कड़े छड़े और नुपूरोंको झनझनाती हुईं छम्म छम्म करके भीतर घुस गयीं।

एकान्त हो जानेपर नारदजीने आदिसे अन्त तक सब समाचार सुनाकर प्रार्थना की "भगवान्! मैं चाहता यह हूँ, कि पर्वत मुनिका मुख आप बन्दरका कर दें।" यह सुनकर भगवान्ने प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा—"मुनिवर! हम आपके हितका काम अवश्य करेंगे पर्वत मुनिका मुख बंदर का अवश्य हो जायगा।" यह सुनकर नारद मुनि प्रसन्न हुए चले गये।

पर्वत मुनिको या तो कि गुप्तचरसे समाचार मिल गया या उनके मनमें भी चटपटी लग रही थी, इसीलिये वे भी अपनी सिफारिस कराने वैकुंठको चल दिये। एकान्तमें जाकर उन्होंने भी भगवान्से सब बात कह दी और प्रार्थनाकी "आप नारदजीका मुख लंगूरका-सा बना दें।" यह सुनकर हँसते हुए भगवान्ने कहा—"मुनिवर जिसमें आपका कल्याण होगा, उसको हम अवश्य करेंगे, नारदका मुख लगूरका-सा हो जायगा।" यह सुनकर पर्वत मुनि भी प्रसन्नता प्रकट करते हुए प्रस्थान कर गये।

नियत तिथिपर दोनों मुनि राजाके यहाँ पहुँचे । राज-सभामें दोनों जाकर ठाठ बाठसे बैठे । सोलह शृंगार करके हाथमें जयमाल लेकर राजकुमारी आयी । राजाने कहा-"बेटी ! ये दोनों मुनीश्वर बैठे हैं । दोनों ही बड़े तेजस्वी तपस्वी हैं, तू इनमेंसे किसी एकको वरण करले।" यह सुनकर कन्या आगे बढ़ी वह भयभीत होकर वहाँकी वहीं खड़ी रह गयी ।

राजाने बार बार कहा—"बेटी ! इन दोनों मुनियोंमेंसे एकको वरण कर ले।" तब कन्याने लजाते हुए कहा—"पिताजी यहाँ मुनि कहाँ हैं । एक तो बंदर है एक लंगूर है, इन दोनोंके बीचमें एक बड़े सुंदर पुरुष बैठे हैं।"

इतना सुनते ही नारद और पर्वत दोनों ही समझ गये, भगवान्‌ने हमारे साथ छल किया । तुरंत पर्वत मुनि बोले-"कुमारी ! वह पुरुष कैसा है ?"

राज कुमारीने कहा—"वह पुरुष नीलवर्णका है।"

'पर्वत मुनिने पूछा—"उसके हाथमें क्या है ?"

कन्याने कहा—"उनके कमलके समान हाथमें धनुष-बाण है । गलेमें सुंदर घुटनोंतक लटकती हुई माला पहिने हैं।"

राजाने कहा—"तुझे यदि वे अच्छे लगें तो उन्हें ही तू माला पहिना दे ।"

इतना सुनते ही लड़कीने उनके कंठमें माला डाल दी वे उस कन्याको लेकर चले गये । अब तो नारद और पर्वत दोनों ही मिल गये । दोनों निराश और पराजित हो चुके थे । दोनों ही भगवान्‌के पास क्रोधमें भरकर पहुँचे

और बोले—"क्यों महाराज !-आपने हमारे साथ छल किया ?"

भगवानने कहा—"कैसा छल ? मुनियो ! मैं तो कुछ जानता नहीं।"

पर्वत बोले—'आपने हम दोनोंको तो वानर लंगूर बना दिया और हमारे बीचमें बैठकर कन्याको उड़ा लाये।"

भगवान्ने कहा—'मुझे कन्यासे क्या काम ? मेरे पास तो लक्ष्मी है ही। उस बीचके पुरुषके हाथमें क्या था ?"

पर्वत बोले—"उसके हाथमें धनुष बाण था।"

भगवान्ने कहा—"तब बताइये मैं कैसे हो सकता हूँ, मेरा नाम तो चक्री है, मैं तो सब समय शङ्ख, चक्र, गदा, और पद्म इनको धारण किये रहता हूँ। वह कोई और पुरुष होगा।"

यह सुनकर दोनों मुनि राजाको शाप देने चले, वहाँ तेज पुंज होकर भगवानने राजकी भी रक्षाकी कहानी बड़ी है। साराश इतना ही है, कि भगवान् अपने दासोंका सदा हित ही करते रहते हैं वे यदि किसी प्रलोभनमें फँस भी जाते हैं, तो अपनी कृपासे श्रीहरि उन्हें निवारण कर देते हैं, मेरे मनमें अपने महत्वको प्रकाशित करने, अपनी मान प्रतिष्ठा बढानेके लिये अपना नाम करनेके लिये ईर्ष्यावश दूसरोंको नीचा दिखानेके भाव उदित हों, दूसरोंकी कीर्तिको लोभ करनेकी मनसे भी भावना हो तो हे भवभयहारी भगवान् उसे जड मूलसे मेट दो। "भागवत चरित" आपकी ही प्रेरणा और भावनाका फल है।

उसमें मेरा कभी अपना पन हो भी जाय, तो तुम जैसे चाहो, वैसे उसे मिटा देना। भला! मेरे मनमें अहंकारके वृक्षको बहुत बढ़ने न देना अच्छा! तुम्हारा चिन्तन करूँ तुम्हारे सम्बन्धमें लिखूँ और तुम्हारे ही चारु चरितोंका गायन करूँ ऐसा आशीर्वाद आप दें। ऐसा अनुग्रह इस अधमपर करें। अधिक क्या! शुभं भूयात्!

(छप्पय)

हे देवेश्वर! दयित! दयानिधि! दाता! दानी!
है सेवक प्रभुदत्त अल्प मति अवगुनखानी॥
धन, जन, वैभव, राज, विषय सुख नाथ! न चाहूँ।
पद पदुमनिकी भक्ति जनम जनमनिमें पाऊँ॥
का कहिकें बिनती करूँ, अज्ञ अकिंचन दीन हूँ।
कृपा प्रतिज्ञा करि रह्यो, सब विधि साधन हीन हूँ॥
(भागवत चरित, सप्ताह अध्याय १० से उद्धृत)

संकीर्तन-भवन
प्रतिष्ठानपुर (प्रयाग)
चैत्र कृ० ४ | २००७

प्रभु

बुभुक्षित ग्वाल बाल

(९४१)

राम राम महावीर्य कृष्ण दुष्टनिबर्हण।
एषा वै बाधते क्षुन्नस्तच्छान्तिं कर्तुमर्हथः॥
(श्री भा, १० स्क २३ अ १ श्लो)

छप्पय

कहैं सखनि तैं श्याम वृक्ष ये अति उपकारी।
घाम-वायु-जल सहहिं करहिं परहित नित भारी॥
सबई इनकी वस्तु काम सबके ही आवें।
इनढिंग अरथी आइ विमुख कबहूँ नहिं जावें॥
छाया ईंधन कोयला, पत्र पुष्प फल मूल दल।
साधत सबके काजनित, जीवन इनको ई सफल॥

जब तक देह है तब तक देह धर्म भीहैं अंतर इतना ही है कि जो तदीय हैं प्रपन्न हैं अनन्य भक्त हैं शरणागत हैं आश्रित हैं। उनके सब काम श्रीकृष्ण प्रीत्यर्थ होते हैं। भक्ति मार्गमें पुरुषार्थ को उतना महत्व नहीं दिया गया है यदि कुछ पुरुषार्थका अर्थ है

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं–"राजन्! भूखे ग्वाल बाल श्री रामकृष्णके समीप आकर कहने लगे–"हे महापराक्रमी बलरामजी! हे दुष्टोंको दलन करने वाले कृष्ण! यह भूख हमें बड़ी बाधा पहुँचा रही है, इसको आप दोनों मिलकर शान्त करें।"

तो यही कि सर्वात्म भावसे हम श्रीहरिको ही अपना सर्वस्व समझें। यही सबसे बड़ा पुरुषार्थ है। भगवद्भक्तको भूख, प्यास, सरदी, गरमी आधि व्याधि तथा और भी किसी प्रकारकी चिन्ता होती हैं, तो उसे भगवान्के ही सम्मुख निवेदनकर देता है। जाड़ा तो संसारी लोगोंको भी लगता है भक्तको भी लगता है। संसारी लोग इसके लिये रात दिन सोचते हैं, उद्योग करते हैं, रजाई या कम्बल प्राप्त होने पर सबसे कहते हैं—"इसे मैंने बड़े परिश्रमसे बनवाया, इस प्रकार मुझे इसके लिये प्रयत्न करना पड़ा दूसरा तो कोई कर ही नहीं सकता।" भक्तको जाड़ा लगा, उसने भगवान्से कह दिया-"तुरन्त कहींसे वस्त्र आगया, उसे प्रभुप्रसाद ही समझकर बारम्बार सिरपर चढ़ाया, भगवानकी कृपालुताको स्मरण करके शरीर रोमाञ्चित हो गया, नेत्रोंसे अश्रु बहने लगे। यदि नहीं आया, तो मनमें सन्तोषकर लिया-"प्रभु मुझे जाड़ेमें ठिठुरानेमें ही मेरा हित समझते हैं, यदि मेरा हित न समझते, तो उनके यहाँ कम्बल रजाइयोंकी तो कुछ कमी है ही नहीं। वे अनंत कोटि ब्रह्माण्डोंके नायक हैं। उनसे मेरी कोई शत्रुता हो सो भी बात नहीं वे मेरे प्रियसे भी प्रिय हैं। मेरे ही क्या सम्पूर्ण भूतों-के वे सुहृद् हैं। उनको मेरी आवश्यकताका पता न हो सो भी बात नहीं, वे सर्वान्तर्यामी हैं। वे मेरा अनिष्ट करना चाहते हों सो भी बात नहीं। वे तो मंगलमय हैं, कल्याणोंके निधान शंकर हैं, सुख स्वरूप हैं, सबके सगे सम्बन्धी हैं।

जीवका एक मात्र कर्तव्य है, अपनी सब बातें भगवान्से निष्कपट होकर भोले बालककी भाँति-कह दे। और वे जो कहें उसे करे, उनकी हाँमें हाँ मिलाता रहे। उनसे मिलनेको छटपटाता रहे। अन्तमें उन्हें अपनाना तो होगा ही।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! ब्रजबालाओंको वर देकर वन-

वारी अपने सखाओंके सहित गोष्ठमें आये गौओंको खोलकर बलदेव और,सखाओंसे घिरे हुए वृन्दावनसे दूर निकल गये। वनमें जाकर भगवान्ने देखा सर्वत्र सन्नाटा छाया हुआ है, प्रकृति स्तब्ध है। वृक्षोंकी शाखाओंपर बैठे पक्षी गण कलरवकर रहे हैं, कोई आकाशमें उड रहे हैं, कोई भूमिपर बैठकर कण चुग रहे हैं, कोई वृक्षोंपर लगे फलोंको कुतर रहें हैं। भ्रमर इधर उधर मधुके लोभसे पुष्पोंको झकझोर रहे हैं, उनके मुखको नत करके मत्त होकर रसका पानकर रहे हैं। कमल खिलकर हिलकर परस्परमें मिलकर कुछ मन्त्रणासे कर रहे है, अथवा भ्रमरोंका तिरस्कारकर रहे हैं। उन्हें मधुपान करनेको मनाकर रहे हैं। किन्तु वे ढीठ नायककी भाँति उनके निषेधकी ओर ध्यान न देकर उनसे लिपट जाते हैं। अपने स्वार्थ साधनमे लग जाते हैं। भगवान्ने देखा स्थान स्थानपर सघन कुंज निकुंज बनी हुई हैं लतायें वृक्षोंसे लिपटी हुई फूल रही हैं। मानों प्रिय आलिंगनसे प्रसन्न होकर खिल रही हैं। सघन निकुंजोंमें फूली हुई मालती, माधवी, मल्लिका, यूथिका, विष्णुकान्ता, विधारा तथा अन्यान्य लताओंके पुष्पोंकी सुखद सुगंधि चारों ओर फैल रही है। उनकी शीतल छाया बडी ही आनंद दायिनी है। भगवान्ने देखा बहुतसे वृक्षोंमें नवीन कोमल कोमल पत्ते निकल रहे हे। उनके पुराने पत्ते वृद्ध होकर जीर्ण शीर्ण बनकर स्वतः ही भूमि पर गिर पडे हैं। उन गिरे हुए पुराने शुष्क पत्तोंको भडभूजे भाड़-में जलानेके लिये एकत्रितकर रहे हैं। बहुतसे वृक्षोंपर सुंदर सुंदर खिले हुए पुष्प लगे हैं। उन पुष्पोंके मधुको भौंरें पी रहे हैं। माली गण उन्हें माला बनानेके निमित तोड रहे है। बहुत-सी व्रज बालायें पूजाके लिये उन्हें एकत्रितकर रही हैं। पारिजातके पुष्पोंसे भूमि ढक-सी गई है। उनकी डंडी तो लाल वर्णकी है।

और खिली हुई पंखुडियाँ सफेद हैं। इससे उनकी शोभा अनुपम है।

बहुतसे वृक्ष फलोंके भारसे नत हैं। उनके फलोंको पक्षी खा रहे हैं। जंगली काले भील उन्हें एकत्रित करके अपनी आजीविका चलानेको ले जा रहे हैं। फलोंपर ही निर्वाह करने वाले ऋषि मुनि पके पके फलोंको संग्रहकर रहे हैं। भगवान्ने बड़े बडे वटके पीपलके सघन तथा प्राचीन पादप देखे। जिनकी छायामें सहस्रों मनुष्य बैठ सकें। पानी पडनेपर भी जिनके नीचे भीग न सकें। जिनकी छायामें जंगली जीव तथा पथिक आकर विश्राम करते हैं। बहुतसे ऋषि छोटे छोटे वृक्षोंको खोदकर उनमेंसे कंद-मूल निकाल रहें हैं। कुछ रंग बनाने वाले तथा ओषधि निर्माण करने वाले वृक्षोंकी छालोंको उतार उतारकर एकत्रितकर रहें हैं। बहुतसे व्रज वासी सूखे सूखे वृक्षोंको काट काटकर भोजन बनाने तथा अन्यान्य कार्य करनेको लिये जा रहे हैं। कुछ लोग गीले ही वृक्षोंको काट रहे हैं। कुछ धूप बेचने वाले अगर, तगर, छार छबीला आदि छोटे छोटे वृक्षोंको काट कूटकर धूप बना रहे हैं। कुछ वृक्षोंसे गोंद ही एकत्रितकर रहे हैं। कुछ सूखे वृक्षोंको जलाकर उनके कोयले बना रहे हैं। कुछ पुरानी राखको खाद बनाकर खेतोंमें डालनेको लिये जा रहें हैं। कुछ स्त्री पुरुष छोटे छोटे अंकुरोंको तोड़कर साग बनानेके लिये ही ले जा रहे हैं।"

इन सब दृश्यों को देख कर दामोदर अपने सभी सखाओंसे प्रेमपूर्वक उनका नाम ले लेकर बोले—"हे स्तोक कृष्ण! हे भैया! देखो! ये वृक्ष कैसे तपस्वी परोपकारी साधु और सज्जन हैं। मैं तो समझता हूँ, संसारमें इन्हींका जीवन धन्य है।

स्तोककृष्णने कहा—"कनुआ भैया! तू इन तम प्रधान अचर वृक्षको तपस्वी क्यों कहता है?"

भगवान् बोले-"अरे, भैया ! अचर होनेसे ही कोई बुरा थोड़े ही होता है। देखो ये सदा एक पैरसे खड़े रहते हैं। धूप हो, वर्षा हो, जाड़ा हो, चाहे जो ऋतु हो सबको नंगे होकर अपने सिरपर सहते हैं। वानप्रस्थी तपस्वीको वायु, वर्षा, तथा धूप आदिको सहन करना इसी तपस्याका तो विधान है, ये इन बातोंको बिना सिखाये, जन्मसे ही अपने आप करते हैं, अतः ये जन्मजात तपस्वी हैं।"

इसपर पुनः स्तोक कृष्णने पूछा—"अच्छा ! तू इन्हें साधु संत परोपकारी क्यों कहता है। ये तो व्याख्यान देने परोपकार करने कहीं जाते ही नहीं।"

हँसकर भगवान् बोले—"अरे, भैया ! जानेसे या बोलनेसे ही परोपकार होता हो सो बात नहीं। परोपकार तो मनुष्य जहाँ भी रहे वहींसे कर सकता है। जो परकार्योंको सदा साधता रहे उसे साधु कहते हैं। परोपकार ही उसका व्रत है, उसकी समस्त चेष्टायें दूसरोंके उपकारके ही निमित्त होती हैं। देखो, ये वृक्ष अपने लिये कुछ भी संग्रह नहीं करते। इनकी सब वस्तुएँ दूसरों-के ही काम आती हैं। ये स्वतः बरसे हुए वर्षाके जलको पीते हैं। सड़ी गली दुर्गन्धियुक्त वस्तुओंको अपनी जड़ोंसे खाकर शरीरको बनाये रहते हैं। और निरन्तर उपकारमें ही रत रहते हैं। इनकी एक भी ऐसी वस्तु नहीं जो किसी न किसीके काम-में न आती हो।"

यह सुनकर अंशुनामक गोपबोला—"अच्छा, भैया ! इन वृक्षोंके ये जो सूखे पत्ते अपने आप झड़ जाते हैं। ये किसी काममें आते हैं भला ?

भगवान बोले—"अरे ! तुम इतना भी नहीं जानते ये सूखे पत्ते तो बहुत काम देते हैं। सड़ाकर इनकी खाद बनती है। भड़भूजे इनसे चबैना भूनते हैं। जिसे चबा चबाकर

निर्धन अपने दिन काटते हैं। बहुतसे पत्ते सूखकर ओषधि काम आते हैं। हरे पत्तोंको बकरी भेड़ भैंसें, गौ आदि पशु चरते हैं। इन सूखे पत्तोंके कागद बनते हैं। कुटी छानेके काममें आ हैं, छप्पर बनते हैं। हरे सूखे पत्तोंसे बहुत काम निकलते हैं भूसा, घास आदिको सुखाकर रख लेते हैं। पशु खाते हैं।"

इसपर श्रीदामा बोला—"भैया! तू बात तो बड़ी पतेक कह रहा है। हम देखते हैं, वृक्षोंकी एक भी वस्तु ऐसी नहीं जो काममें न आवे। इनके फल फूलोंका भी बड़ा उपयोग है।"

भगवान्ने कहा—"यह भी कुछ पूछनेकी बात है। फूल देवताओंके पूजनके काममें आते हैं। उनकी मालायें बनती हैं। देवताओंके राजाओंके तथा प्राण प्रियाओंके कंठ उन मालाओंसे सुशोभित होते हैं। फूलोंकी शैया बनती हैं, सुकुमारी कामिनियाँ इनके विविध आभूषण बनाकर शरीरोंको सजाती हैं। महुए आदिके बहुतसे फूल खाये जाते हैं, गोभी आदिके बहुतसे फूलोंके साग बनते हैं। बनपसा आदि बहुतसे फूल ओषधिके काममें आते हैं। इसी प्रकार फल भी खानेके काममें आते हैं। बनवासी तो वनके फलोंपर ही निर्वाह करते हैं। फलोंका साग बनता है। अचार, मुरब्बे, बनते हैं। सुखाकर कच्चे पके सभी प्रकारके ओषधियोंके काममें आते हैं। इनकी कौन-सी वस्तु ऐसी है जो काममें न आती हो।

इसपर अर्जुन नामक सखा बोला—"भैया! कुछ वृक्षोंकी वस्तुएँ तो अवश्य ही मनुष्योंके बहुत उपयोगमें आती हैं। और कुछ तो वैसे ही भूमिको घेरे खड़े रहते हैं। अब देखो, बट है, पीपर है, पाकर है, इनपर फूलतो लगते नहीं। फल भी बहुत छोटे छोटे होते हैं, जो मनुष्योंके किसी कामके नहीं। इनसे तो ऐसा कुछ मनुष्योंको विशेष लाभ होता नहीं।"

यह सुन कर भगवान् बोले—'ना, भैया ! यह बात नहीं। ऐसा कोई भी वृक्ष न होगा, जिससे मनुष्योंका प्राणिमात्रका कुछ न कुछ काम न निकलता हो। इन अश्वत्थ और वट आदि वृक्षोंकी तो वनस्पति संज्ञा है, इनके फलोंको पक्षी खाते हैं, इनके पंचपल्लव देवपूजनादि काममें आते हैं। इनके दूधसे अनेक गुणकारी ओषधियोंका निर्माण होता है। हाथी आदि बड़े बड़े जीव इनके ही पत्तोंसे जीते हैं। इनकी छाया इतनी सघन होती है, कि अमित पाथिक इनके नीचे बैठ कर विश्राम करते हैं। ऋषि मुनि इनके आश्रममें ही जप, तप करते हैं। कैसा भी वृक्ष हो उसकी छायासे तो सभीको सुख होगा।"

इसपर विशाल नामक सखा बोला—"बहुतसे सूखे वृक्ष भी तो खड़े रहते हैं, सूखे वृक्षोंकी तो छाया नहीं होती।"

भगवान् बोले—"छाया न भी हो तो भी सूखे वृक्षोंसे संसारका कितना काम निकलता है। सूखी लकड़ी न हो, तो भोजन किससे बने, जाड़ेमें जलाकर किससे शीत निवारण करें। तुम्हारी लकुटी वंशी सब सूखी लकड़ियोंकी ही तो हैं। घर-सूखी लकड़ियोंसे ही बनते हैं। हर, फावड़े, खाट, कुल्हाड़ी, पेटी, नौका कहाँ तक कहें विविध भाँतिकी आवश्यक वस्तुएँ वृक्षकी सूखी लकड़ियोंसे ही बनती हैं। इनके वल्कलोंको लोग पहिनते हैं, भोजपत्रकी पत्तल बनाकर उनपर खाते हैं। विविध भाँतिके रंग वल्कलोंसे निकलते हैं। रस्सियाँ बनाई जाती हैं सुखाकर धूप आदि धूनी देनेकी वस्तुएँ बनती हैं।"

यह सुनकर तेजस्वी देवप्रस्थ बोला—"भैया ! तुम्हारा कहना यथार्थ है, वृक्षोंकी कोई भी वस्तु व्यर्थ नहीं जाती। सूखनेपर ईंधनका काम देते हैं। अपने आपको जलाकर भी प्राणियोंको सुखपहुँचाते हैं।"

भगवान् बोले—"सूखकर ही काममें नहीं आते। जलकर भी बड़े कामके बनजाते हैं। कहावत है:—'जीता हाथी लाखका, मरा हुआ सवालाखका।" लकड़ियोंको जलादो उनके कोयले करदो, वो कोयले लकड़ियोंसे अधिक मूल्यवान् होंगे। भस्म होने-पर भी निरर्थक न जायगी। उससे भी खाद आदि अनेक वस्तुएँ बन जायँगी।"

यह सुनकर वरूथ नामक सखा बोला—"पेड़ोंमेंसे जो रस चूता है वह भी काममें आता है। सीकें भी काममें आती हैं। इनका तो रोग भी जनताके लिये हितकर है।"

भगवान् बोले—"स्त्रियोंका मासिक स्राव, पानीके बुल बुले, ऊसर भूमि और वृक्षोंका गोंद ये चार ब्रह्म-हत्याके चिन्ह हैं। ये तीन वस्तुएँ तो चाहे किसी काम न आवें *किन्तु वृक्षोंकी ब्रह्म-हत्या भी बड़े कामकी होती हैं।* सब वस्तुएँ गोंदसे चिपकाई जाती हैं। राल गोंद ही है जिसकी धूप बनती है। बहरोजा गोंद है जो सारंगीके तारोंको ठीक करता है। हींग गोंद ही है जिससे दाल साग आदि पदार्थ छौंके जाते हैं।"

भगवान कह रहे हैं—"भाइयो! कहाँ तक बतावें इन वृक्षों-के अंकुरसे लेकर बीज तक सभी परोपकारमें ही काम आते हैं। ये वृक्ष अपने फलोंको स्वयं नहीं खाते, ईंट मारने वालेको भी फल देते हैं। काटने वालेका भी उपकार करते हैं। इनसे कोई प्यार करे या द्वेष ये सबसे समान [illegible] ते हैं। सबकी कामनाओंको पूर्ण करते हैं। चाहिये [illegible] संसारमें ऐ

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! इस प्रकार भगवान् वृक्षोंकी ग्वाल, बालोंसे बड़ाई करते हुए, वनमें विचरणकर रहे थे। वे अपनी कृपा भरी दृष्टिसे वृक्षोंके नव पल्लवोंको, गुच्छोंको डालियोंपर लदे हुए फलोंको, सुन्दर खिले हुए फूलोंको पत्तोंको देखते जाते थे। किसीको अपने करकमलोंसे छूलेते। किसीको तोड़ लेते, किसीको सूंघते, किसीको खाते हुए आगे बढ़ रहे थे। जो शाखायें पत्र पुष्प और फलोंके भारसे झुकी हुई थीं जो अन्य बहुत-सी शाखाओंसे सटकर सघन निकुंजके रूपमें बन गई थीं उनके बीचमें होकर श्याम सुन्दर सखाओंके साथ जा रहे थे। वे वन कुंज निकुञ्जोंमें होते हुए यमुना तटपर आये।

यमुना तटपर आकर मध्यान्ह कालहो गया था। उसदिन घरसे कलेऊ करके भी नहीं चले थे। बातों ही बातोंमें भटकते हुए बहुत दूर निकल आये थे अतः सब चलते चलते थक गये। छाक देने वाली गोपियोंने समझा दूसरे वनमें होंगे, अतः वे भोजन लेकर दूसरे वनमें चली गई थीं। गौएँ प्यासी थीं गोप भी भूख प्यासके कारण व्याकुल होरहे थे। सबने गौओंको यमुनाजी-का स्वादिष्ट (शीतल) स्वच्छ तथा अति मधुरजल पिलाया। स्वयंभी सबने घुसकर हाथ, पैर मुख धोये और पेट भरके जल पीया।

जल पिलाकर गौओंको चुगने छोड़ दिया। गौएँ स्वच्छन्दता पूर्वक यमुनाजीके तटवर्ती वनमें हरी हरी घास चरनेलगीं। गोपोंके पेटमें भूखके कारण चूहे कुदकने लगे। खालीपेट पानी पीलेनेसे भूख और भी भड़क उठी। छाक लेकर अभी गोपिकायें आई नहीं थीं आयें कैसे वे तो दूसरे वनमें भटक रहीं थीं। गोपोंने कुछ देर तो भूखको सहा किन्तु जब असह्य होगई, तब वे भगवानके पास जाकर बोले—"भैया, कन्हैया! जैसे ये वृक्ष परोपकारी हैं। वैसे ही भैया तूभी बड़ा परोपकारी

है।ये बलदाऊ भी बड़े परोपकारी हैं। भैया तुम लोगोंने अघासुर, बकासुर, धेनुकासुर व्योमासुर, प्रलम्बासुर तथा और भी अनेकों असुरोंको मारकर ब्रजका बड़ा उपकार किया। हमने यह भी सुना है जब तू छोटा था तो एक जलमुही कोई पूतना राक्षसी आई थी उसे भी तैंने मार दिया किन्तु भैया! एक उपकार तैंने नहीं किया। यदि उसेभी करदेता तो संसारका बेड़ा पार हो जाता, सबके दुख दूर हो जाते।"

भगवान्‌ने कहा—"वह कौन-सा उपकार है। सुनें भी तो सही।"

गोप बोले—"भैया! इस रांड़ भूखको तू और मार देता तो सब झंझट ही दूर हो जाते। इस रांड़ने संसारको बड़ा दुखीकर रखा है। इसीके पीछे लोग मारे मारे फिर रहे हैं। समुद्रको पार करके जाते हैं। पर्वतोंमें भटकते फिरते हैं। प्राणोंका प्रण लगाकर व्यापार, चोरी तथा अन्यान्य साहसके काम करते हैं। इस राक्षसीको तू और पछाड़ दे।"

हँसकर भगवान् बोले—"अरे तुम अपने मनकी बात बताओ ऐसी लम्बी चौड़ी भूमिका क्यों बाँध रहे हो?"

गोपोंने कहा—"अब भैया! क्या कहें तू संकेतमें ही समझले। पेटमें चूहे कुदुकु, फुदुकु रहे हैं। आँतें करें मरें करें मरकर रही हैं। कुछ पेट पूजाका डौल डाल होना चाहिये।"

भगवान् हँसकर बोले—"जाओ, सारेओ! तुम जन्मके भूखे ही रहे। यहाँ वनमें क्या रखा है। वृन्दावनसे तो हम कई कोश दूर हैं। यह तो मधुवन है। यहाँ खाने पीनेका ढँग कहाँ यमुनाजल पान करो डंडपेलो बहुत भूख हो तो वृक्षोंके फल तोड़ कर खाओ।"

गोप बोले—"अरे, भैया! अब तू भी ऐसी निराशाकी बातें करने लगा। यहाँ फल कहाँ हैं। टैंटी हैं कचे बेल हैं, झरबेरि

याँके बेर हैं। इन कड़वे कषे कसैले फलोंसे पेट थोड़े ही भरेगा इन फलोंको तो शरीरको जलाने वाले तपस्वी खायँ हम तो वैष्णव हैं। हमें तो प्रभुकी प्रसादी कुर कुरी मुर मुरी, लुच लुची सुन्दर सुन्दर स्वादिष्ट वस्तुएँ चाहिए। आज तो भैया! कुछ माल उड़े।

भगवान् तो आज भुलावा देकर लाये ही इसी लिये थे, उन्हें तो आज अपनी परम भक्ता मथुरा निवासिनी विप्रपत्नियों पर कृपा करनी थी। अतः इधर उधर देखकर बोले—"यमुना किनारे यह धूँआ किस बातका उठ रहा है। देखना कोई भैया।"

कई लड़के पेड़ोंपर चढ़ गये और वे धूँएकी ओर देखकर वहाँसे बोले—"भैया! स्वाहा स्वाहा हो रही है। ऐसा लगता है कोई बड़ा भारी यज्ञ हो रहा है।"

गोप यह कह ही रहे थे, कि एक पथिक उधरसे निकला। भगवान्ने उससे पूछा—'भैया! यह धूँआ किस बातका उठ रहा है। उसने बताया—' ब्रजराजकुमार! यहाँसे कुछ ही दूरी पर बहुतसे वेदपाठी ब्राह्मण गण स्वर्गकी कामनासे एक बड़ा भारी अङ्गिरस नामक यज्ञकर रहे हैं?"

तब भगवान्ने प्रसन्नता प्रकट करते हुए गोपोंसे कहा—"देखो भाई! यदि तुम्हें बहुत भूखलग रही है, तो यज्ञशालामें ब्राह्मणोंके पास चले जाओ और भोजनके लिये कुछ माँग लाओ।"

गोपोंने कहा—"अरे कनुआ भैया! हमलोग अहीरकी जाति, हमारे बाप दादोंने भी कभी भीख नहीं माँगी, हमसे भीख क्यों मँगवाता है?"

हँसकर भगवान् बोले—"भैया! भूख बुरी वस्तु होती है। भूखमें सबकुछ करना पड़ता है, तुम संकोच मत करो।"

गोप बोले—"अरे, भैया ! संकोचकी क्या बात है, जब तू कहता है, तो सब कुछ करेंगे। तेरे कहनेसे तो हम कूआमें भी कूद पड़ेंगे, किन्तु भैया ! हम गोपोंको यज्ञशालामें कुछ देगा कौन ? हमें तो वे भीतर भी न घुसने देंगे।"

भगवान् बोले—"भीतर घुसनेका काम क्याहै बाहरसे ही माँग-लेना। तुम्हें स्वयं माँगनेमें संकोच होतो बड़े भैया बलदाऊजीका नाम लेलेना। मेरा नाम लेना, कहना उन्होंने हमें भेजा है। वहाँ जोभी दाल, भात, रोटी, कढ़ी, साग हो वही ले आना।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! भगवानकी आज्ञा पाकर वे भूखसे व्याकुल हुए गोप ब्राह्मणोंसे भोजन माँगनेके लिये यज्ञ-शालाकी ओर चले।"

छप्पय

गोप कहें सब सत्य वृक्ष सम तू उपकारी।
भैया ! जैसे बने मेटि तू विपति हमारी॥
आज लगी अति भूख छाक अब तक नहिं आई।
सुनि बालनिके बचन विहँसि बोले बलभाई॥
सत्र आङ्गिरस करहिं द्विज, जाओ मखशाला तुरत।
करो याचना अन्नकी, सब विनम्र ह्वैकें प्रनत॥

—*—

विप्र पत्नियोंसे अन्नकी याचना

(९४२)

नमो वो विप्रपत्नीभ्यो निबोधत वचांसि नः।
इतोऽविदूरे चरता कृष्णेनेहेषिता वयम्॥
गाश्चारयन्स गोपालैः सरामो दूरमागतः॥
बुभुक्षितस्य तस्यान्नं सानुगस्य प्रदीयताम्॥ *

(श्रीभा, १० स्क० २३ अ० १६, १७ श्लो०)

छप्पय

हरि आयसु सब पाइ गये विप्रनि ढिँग बालक।
कहें सुनहु द्विज निकट कृष्ण आये पशु पालक॥
होहि अन्न कछु देहु खाइ तें भूख बुझावें।
यज्ञ शेष चरु पाइ ग्वाल सब तुमहिँ सरावें॥
फरी न नाहीँ नहिँ दयो, मौनी सब द्विज बनि गये।
लौटि सखनि हरि तें कही, नहिं निराश नटवर भये॥

जिसका हम निरन्तर चिन्तन करते हैं, उसके आनेका कोई सम्वाद देता है, तो हृदय प्रफुल्लित हो जाता है।

---

*श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! गोपोंने जाकर विप्र पत्नियोंसे कहा—"हे विप्रपत्नियो! हम सब तुम्हें पैलगी करते हैं। आप हमारी बात सुनिये यहाँसे कुछ ही दूर पर श्रीकृष्ण गौओंके पीछे विचर रहे हैं, उन्होंने

उसके सम्बन्धकी कोई कथा कहता है, तो कान कृतार्थ हो जाते हैं वे उत्सुक होकर उसीकी चर्चा सुनना चाहते हैं, नेत्र उसके दर्शनोंके लिये छटपटाने लगते हैं। अङ्ग उनके सुखद स्पर्शके लिये लालायित हो उठता है। प्रेममें पदे पदे गोपन होता है, बात ऐसे सामान्य ढँगसे कही जाती है कि सर्व साधारण लोग तो उसे व्यापक समझते हैं, किन्तु वह होती है उनके प्रति ही।

सूतजी कहते हैं—' मुनियो ! भगवान्को कृपा तो करनी थी उन यज्ञ करने वाले विप्रोंकी पत्नियोंपर किन्तु सीधे कैसे कहते। वहाँ बलदेवजी भी थे और भी गोप थे, एक साथ पहिले कह देते कि तुम स्त्रियोंके पास चले जाओ, तो सब पूछ बैठते— "कनुआ ! तेरी उनसे कबकी साँठ गाँठ है, तू उन्हें कैसे जानता है ?"

यद्यपि भगवान् सर्वज्ञ और सर्वान्तर्यामी हैं किन्तु वह तो नरनाट्य कर रहे हैं। ग्वालबालोंके साथ ग्रामीण ग्वालोंका-सा अभिनयकर रहे हैं, इसमें यथा शक्ति ऐश्वर्य प्रकट न हो इसकी चेष्टा करते रहते हैं। इसीलिये पहिले गोपोंसे कहा—"तुम लोग याज्ञिक ब्राह्मणोंके निकट अन्न माँगने जाओ।"

भगवान्की आज्ञा पाकर गोप गये और जाकर उन ब्राह्मणोंको भूमिमें लोटकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया। ब्राह्मणोंने समझा ये तो कोई बड़े श्रद्धावान् भावुक भक्त हैं। अतः उन्होंने बड़े शिष्टाचारसे कुशल पूछी। तब हाथ जोड़कर गोपोंने नम्रता पूर्वक कहा—"हे ब्राह्मणो ! हम आपके समीप एक आवश्यक कार्यसे आये हैं।"

हमें भेजा है। वे ग्वाल वालों और बलरामजीके साथ गौएं चराते हुये वृन्दावनसे बहुत दूर निकल आये हैं। उन्हें बड़ी भूख लगी है अतः उनके लिये और उनके साथियोंके लिये कुछ भोजन दीजिये।"

ब्राह्मणोंने कहा—"कहो भाई, क्या बात है ?"

गोपोंने कहा—"हम वृन्दावनके रहने वाले ग्वाल-बाल हैं। हम सबके स्वामी श्रीकृष्ण हैं। हम सदा उनकी आज्ञा मानते हैं। उन्हींकी आज्ञासे हम आपके समीप आये हैं। उन्होंने तथा उनके बड़े भाई बलदेवजीने हमें आपके समीप भेजा है।"

ब्राह्मणोंने पूछा—"वे राम और कृष्ण कहाँ हैं, किस लिये उन्होंने तुम्हें हमारे समीप भेजा है ?"

गोपोंने कहा—"यहाँसे समीप ही वे जो हरे हरे वृक्ष दिखाई देते हैं, वहीं वे गौओंको चरा रहे हैं। उन्हें बड़ी भूख लग रही है, आपसे उन्होंने कुछ भोजनके लिये अन्न माँगा है, यदि आप दे सकते हों, तो कुछ बना बनाया अन्न दीजिये।"

ब्राह्मणोंने कहा—"हमारी उनसे जान नहीं, पहिचान नहीं उन्होंने हमारे पास ऐसे ही तुम सबको क्यों भेज दिया ?"

गोप बोले—"हे भूदेवगण!! सज्जन पुरुष गुणोंके कारण ही सबके परिचित बन जाते हैं। जो सत्कर्म करते हैं, उस से सभी आशा रखते हैं। जो परोपकार करते हैं, उनमें सभी-की आत्मीयता होती है। आप इतना भारी यज्ञ कर रहे हैं। आपके कार्यको ही देखसुनकर उन्होंने अनुमान लगा लिया होगा, कि आप सभी धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ हैं। धर्मात्मासे सभी आशा रखते हैं। फलवान् वृक्षके निकट ही लोग फलकी आशासे जाते हैं, जो स्वयं सूखा है उसपर तो पक्षी भी नहीं बैठते। आपके धर्म कार्यको देखकर ही हम राम-श्याम-की आज्ञासे आपकी सेवामें उपस्थित हुये हैं; यदि आपकी श्रद्धा हो, तो उन भोजनार्थियोंके लिये थोड़ा भात दे दें।"

इसपर ब्राह्मणोंने कहा—"अरे, गोपो! तुम तो गँवार ही रहे। तुम्हें शास्त्रीय विधिका ज्ञान नहीं। हम यज्ञमें

व्यक्ति हैं। शास्त्रकी आज्ञा है, दीक्षितके अन्नको न खाना चाहिये, फिर तुमलोग हमारा अन्न कैसे खा सकते हो?"

इसपर एक वाचाल-सा गोप बोला—"ब्राह्मणो ! हम लोग तो अवश्य गँवार हैं, किन्तु हमारा साथी श्रीकृष्ण इन सब बातोंको बहुत जानता है। उसीके मुखसे हमने सुना है. दो प्रकारके यज्ञ हैं, पशु यज्ञ और सोम यज्ञ। पशु यज्ञमें जिस दिनसे दीक्षा ले और जिस दिन अग्निषोमीय पशुका बलिदान हो उस दिन तक उसका अन्न न खानेका विधान है। पशु-बलिदान हो जाने पर उसके अन्न खानेमें कोई दोष नहीं। आपके यहाँ तो सुना पशुबलि कल ही हो चुकी, अतः आपके अन्न खानेमें कोई शास्त्रीय दोष तो हमें दीखता नहीं, हाँ, यदि आप सोमयाग करते होते सौत्रामणी यज्ञकी दीक्षा लिये होते, तो आपका अन्न दीक्षा पर्यन्त सर्वदा ही अग्राह्य माना जाता। सो, आप सौत्रामणी यज्ञ तो कर नहीं रहे हैं। आप तो आङ्गिरस नामक पशु यज्ञकर रहे हैं। बलिदान समाप्त ही हो गया, अब आप अन्न देसकते हैं, हम ले सकते हैं।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! वे फलके हेतुसे कर्म करने वाले क्षुद्र प्रकृतिके थे। वे तो कर्मासक्त स्वर्गकी स्वल्प इच्छा रखने वाले कर्मठ थे। यद्यपि वे थे, तो सीमित और संकीर्ण विचारके ही, किन्तु अपनेको बहुत बड़ा मानते थे। उन यज्ञिकों गोपोंकी बात सुनकर भी अनसुनीकर दी। उनकी युक्ति युक्तसे बातोंको सुनकर वे सिटपिटा गये। उन्होंने न गोपों-से हाँ देगें, यही बात कही और न यही कहा कि भाग जाओ हम नहीं देसकते। वे पीठ फेरकर दूसरे काममें लग गये, कुछ बोले नहीं।

मना करनेके कई प्रकार होते हैं। एक तो स्पष्ट मना करना, दूसरे कोई ऐसी असंभव बात लगा देना कि वह पूरी ही न हो,

तीसरे किसी औरके ऊपर टाल देना, चौथे चुप हो जाना, हाँ, ना कुछ भी न कहना। पाचवें जानका टाल कर इधर उधरकी अप्रासंगिक बातें करने लगना। गोपोंने जब देखा, इन याज्ञिकोंकी अन्न देनेकी इच्छा नहीं है तो वे सब निराश होकर लौट गये। जाकर उन्होंने भगवानसे कहा—"कनुआ भैया ? किन दरिद्रियोंके पास तैंने हमें भेजे दिया। अरे वे तो बड़े सूमड़े निकले। वे तो जानदी पगाय। अन्न देना तो दूर कोई मधुर वाणी भी नहीं बोला।"

भगवान्ने देखा भूखके कारण गोपोंका मुख कुम्हिला गया है, वे बड़े निराश हो रहे हैं। तब उन्होंने कहा—"अरे, तुम लोग निराश हो गये क्या ?"

गोपोंने कहा—"अरे भैया! निराशाकी तो बात ही है, जनम करमम तो माँगने गये, सो भी रिक्त-हस्त लौटे। कुछ भी मिला नहीं। हमारा तो अन्तरात्म जल भुन गई।"

गोपोंको दुखित और कुपित देखकर भगवान ने दुखी हुए न उन्होंने उन अज्ञ ब्राह्मणोंपर क्रोध ही किया। यद्यपि उन मूर्खोंने अनुचित व्यवहार किया। भगवत् आज्ञाका तिरस्कार किया। भगवान् यज्ञसे भिन्न थोड़े ही हैं देश, काल यज्ञीय, छोटे बड़े समस्त द्रव्य, मन्त्र, ऋत्विज, अग्नि, देवता, यजमान, यज्ञ और धर्म ये सब भगवानके ही तो मूर्ति हैं ये भगवानके ही तो अंग हैं। इन सबके अंगी स्वयं साक्षात् परम ब्रह्म अधोक्षज श्रीहरिको इन ब्राह्मणोंने साधारण व्यक्ति समझकर उनका सम्मान नहीं किया, फिर भी भगवान्ने उनकी मूढ़ताको क्षमा कर दिया। वे गोपोंको आश्वासन देते हुए बोले—"अरे भैयाओ! निराशाकी कोई बात नहीं। भैया मांगने जब जाय तो मान अपमानको घरकी खूँटीपर ही टाँग कर जाना चाहिए। भीख मांगने जाय, तो

यह पहिले ही सोचकर जाय कि जिसके समीप माँगने जाते हैं, वह मना करनेमें स्वतन्त्र है किन्तु माँगने वाले का तिरस्कार नहीं हुआ। वामन भगवान् भी जब बलिके यहाँ माँगने गये तो छोटे वामन बनकर गये थे। मनस्वी और कार्यार्थीको सुख दुखकी मान अपमानकी चिन्ता न करनी चाहिये। मेरे कहने से तुम एक बार और जाओ। अबके ब्राह्मणोंके पास न जाकर उनकी पत्नियोंके पास जाना।"

गायोंने भूखके मारे दीनताके स्वरमें कहा—"अरे, भैया, कनुआ! तू हमें लुगाइयोंके पास क्यों भेजता है। ये लुगाइयाँ तो बड़ी सूमड़ी होती हैं। जिनमें इनका ममत्व होता है, उसे तो अच्छी अच्छी वस्तु खिलाती हैं। ऐसे वैसेको वैसे ही टरका देती हैं। अपना पति हो पुत्र हो, सगा भाई हो उसे तो चुपके चुपके सुन्दर चिकनी चुपड़ी चुपड़ी पतली पतली रोटी दे देंगी। शेष जेठ, ससुर, देवर या अन्य ऐसे ही लोगोंको जैसी तैसी देकर पिंड छुड़ावेंगी।"

यह सुनकर भगवान् हँस पड़े और उनमेंसे जो गोप बहुत बोल रहा था, उससे बोले—"प्रतीत होता है, तेरी भाभी तुझे बासी, रूखी, जूठी, फूटी रोटी देती है। भैया! सब स्त्रियाँ एक-सी कंजूस नहीं होतीं। कुछ गृहलक्ष्मी भी होती हैं, या तो पुरुषोंमें, स्त्रियोंमें सभीमें कृपण होते हैं। अच्छा थोड़ी देरको मानलो ये स्त्रियाँ कृपण भी हैं, तो भी तो इन्हींसे माँगना होगा। दूध तो गैया ही देगी, बैल तो दूध देता नहीं। भोजन माँगने तो लुगाइयोंके ही पास जाना होगा। वे विप्र पत्नियाँ ऐसी नहीं हैं। उनका मुझमें अत्यन्त प्रीति है, यद्यपि उनका तन वहाँ रहता है, किन्तु मन सदा मुझमें ही लगा रहता है। तुम चिन्ता मत करो तुम चले भैयाओ, तथा मेरा नाम लेना वे तुम्हें अवश्य अन्न देंगी।"

हमारे कनुआ भैयाक उन लुगाइयाँसे जान पहिचान है यह सुनकर ग्वालोंको बड़ा प्रसन्नता हुई। वे व्यङ्गके स्वरमें बोले—"अच्छा, भैया, तेरा उनका मेल जोल है ? कबसे तेरी उनकी जान पहिचान है ?"

भगवान्ने प्रेमके रोषमें उन्हें कुछ झिड़कते हुए कहा— 'अरे तुम तो बातकी खाल निकालने लगे। तुम्हें आम खाने या पेड़ गिनने। मेरा कबसे भी जान पहिचान हो इस बातसे तुम्हें क्या प्रयोजन ? तुम मेरा बलदाऊका नाम लेना, अन्नके तुम्हें अन्न अवश्य मिलेगा।"

ग्वालोंने कहा—"अरे, भैया ! हम तेरी बात टाल तो सकते नहीं, जाते हैं, किन्तु ऐसा न हो, फिर हमें निराश होकर लौटना पड़े। तेरी तो उनसे जान पहिचान है ऐसा न हो तेरे लिये और बलदाऊके लिये दो पत्तलें लगा दें चार चार पूड़ियाँ और तनिक तनिक-सा भात साग रखकर दे दें। तुम दोनों तो उड़ा जाओगे। हम सब फिर भी ठठनपाल मदन गुपाल ही रह जायँगे।"

यह सुनकर भगवान् ठठाकर मारकर हँस पड़े और हँसते हँसते बोले—'अरे, सारे ओ क्यों घबड़ाते हो। अबके ऐसे माल मिलेंगे कि तुम सबके सब तृप्त हो जाओगे। लुचलुचे चमुरमुरे गरमा गरम माल मिलेंगे। जाओ देरी करनेका काम नहीं है।"

भगवान्की यह बात सुनकर वे प्रसन्नता पूर्वक फिर यज्ञ मंडपकी ओर चले। अबके वे दूसरे मार्गसे गये, कि ब्राह्मण उन्हें देख न लें। सबसे पीछे जो पत्नी शाला बनी थी, उसमें जाकर उन्होंने भूमिमें लोटकर द्विज पत्नियोंको प्रणाम किया और कहा—"मैया को दंडोत।"

उस समय सभी द्विज पत्नियाँ घरके सब काम करके सोलह

श्रृंगार किये हुए स्वस्थ चित्तसे सुख पूर्वक बैठी हुयीं परस्परमें कृष्ण कथा कह रही थीं और आनन्दमें विभोर हो रही थीं। समय और परिस्थितिका भी याचना पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। यदि चित्त व्यग्र हो, किसी चिन्तामें निमग्न हो अपने किसी अत्यंत प्यारसे प्रेमकी बातें कर रहे हों, शौचादिको जा रहे हों, साधारण वस्त्रोंमें या नंगे बैठे हों, कोई ऐसा वैसा साधारण कामकर रहे हों, ऐसे समय माँगने जाय तो उसे निराश होकर लौटना होगा। ऐसे याचकको उसी समय जाना चाहिये जब दाता अव्यग्र चित्तसे सुख पूर्वक बैठा है, अच्छी प्रकार सज बज कर अपने पदके अनुरूप वस्त्र भूषणोंसे अलङ्कृत हो कोई धर्म सदाचारके अच्छे कार्य कर रहा हो, उस समय जो याचना की जाती है वह प्रायः निष्फल होती ही नहीं। गोप सौभाग्यसे ऐसे ही समय गये फिर वे तो भगवानके भेजे गये थे, चाहे जब भी जाते भक्त तो भगवान्की आज्ञाका पालन सर्वदा ही करनेको प्रस्तुत रहते हैं।

गोपोंको देखकर लजाते हुए उन द्विज पत्नियोंने पूछा—"कहो, भैया ! क्या बात है ?"

इसपर गोपोंने कहा— देवियो ! हम जो निवेदन करते हैं उसे आप ध्यान पूर्वक श्रवण करें। हमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र-जीने भेजा है।"

शौनकजीने कहा — "सूतजी ! भगवानने तो कहा तुम बल-दाऊजीका मेरा दोनोंका नाम लेना। कहना दोनोंने हमें भेजा है।" गोपोंने अकेले श्रीकृष्णका ही नाम क्यों लिया ?"

यह सुनकर हँसते हुए सूतजी बोले—"अजी, महाराज ! ये संत तो कहनेका तिक मर्म जानते हैं। गोप भी समझते थे, भगवान्ने आदर सम्मान करनेके लिये बलदेवजीका नाम ले दिया है। बलदाऊजी भी समझते थे, मेरी उससे जान नहीं

पहिचान करीं। वे देंगीं तो श्रीकृष्णके ही नामसे देंगीं। कुछ शिष्टाचारकी बातें कही जाती हैं और ढंगसे उनका अर्थ और व्यवहार होता है अन्य ढंगसे।"

यह सुनकर हँसते हुए शौनकजी बोले—"अब सूतजी! इन तिकड़मकी बातोंको तो तुम ही समझो। प्रेमका मार्ग बड़ा विचित्र है इसकी उठन बोलन चितवन, भाषा सभीमें रहस्य भरा होता है। हाँ, तो फिर क्या हुआ?"

सूतजी बोले— महाराज! आनंदकन्द नंदनंदन व्रजचन्द्र श्रीकृष्णचन्द्रका नाम सुनते ही वे मनकी सब द्विजपत्नियाँ चौंक पड़ीं और बोलीं—'क्या कहा ग्वाल बालो! श्यामसुन्दर यहाँ कहीं समीपमें आये हैं? कहाँ हैं? क्या कर रहे हैं? कब तक रहेंगे? कितनी दूर हैं?

द्विज पत्नियोंको इस प्रकार उत्सुकता पूर्वक प्रश्न करते देखकर गोपोंका हृदय बाँसों उछलने लगा। वे बोले—"यहाँसे समीप ही वह देखो उस घटके समीप ही श्यामसुन्दर अपने बड़े भाई बलदेवजीके साथ गौएँ चरा रहे हैं। आज भूल भूलमें बात करते करते बहुत दूर निकल आये हैं। दो पहर ढल गया आज उनकी छाक भी नहीं आई है। उन्हें बहुत भूख लग रही है। यदि तुम देसकती हो, तो उनके लिये कुछ अन्न हमें देदो।"

'श्यामसुन्दर समीप हो आये हैं और वे भूखे हैं, इतना सुनते ही द्विजपत्नियोंकी विचित्र दशा हो गई। हाय! श्यामसुन्दर हमारे समीप आये भी तो भूखे आये। धन्य है, आज हम अपने हाथसे परोसकर उन्हें खिलावेंगी। हमारे ये हाथ सफल हो जायगे। इतने दिनसे जो भोजन बनानेमें श्रम करती रहीं हैं आज हमारा सब श्रम सार्थक हो जायगा। श्यामसुन्दर सखाओं सहित हमारे बनाये भोजनको पावेंगे।" इस विचारके

आते ही उनके रोम रोम खिल उठे। वस्त्र भूषणोंसे सुसज्जित हो करतो वे बैठी ही थीं। भगवान्‌के दर्शनोंका लालसाने उनके चित्तको अत्यंत चंचल बना दिया था। नित्य निरन्तर उन पुण्य कीर्ति प्रभुकी कीर्ति सुनते सुनते उनका मन उनमें मिल गया था।

इतने दिनसे जो तपस्याकी थी, आज उसके फल मिलनेका समयका आ गया। वे परस्परमें कहने लगीं। अहा! आज हमारा जीवन सफल हो जायेगा। श्याम हमारे हाथका बना प्रसाद पायेंगे।"

"गोपोंने देखा ये तो बार बार श्यामसुन्दरका ही नामले रही हैं। ऐसा न हो कि एक पत्तल अन्नकर वह हैं ले जाओ।" इसलिये वे बोले "देवियो! श्रीकृष्णके साथ बहुतसे ग्वाल-बाल हैं, सबके सब भूखे हैं। श्याम-सुन्दर अकले नहीं खाते हैं, अपने सखाओंको साथ बिठाकर तब गोष्ठा करते हैं।"

द्विजपत्नियोंने कहा—"भैया! तुम चिंता मत करो। उनका दिया हुआ हमारे यहाँ सब कुछ है बहुत है। हम सबके लिये स्वयं ही लेकर चलती हैं तुम तनिक हमें मार्ग बताते चलना कि श्याम कहाँ हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! यह सुनकर गोपोंके हर्षका ठिकाना नहीं रहा। भूखके कारण वे व्याकुल हो रहे थे। सोच रहे थे भोजन हमें वहाँ तक ढोना पड़ेगा। मुखमें जीभ। लार गिरने लगी और मार्गमें ही उड़ा गये, तो श्याम-कृष्ण देखतेके-देखते ही रह जायँगे।' यही सोचकर वे बोले— देवियो! आप भोजनके थालोंको सम्हाललो तब तक हम खड़े हैं।"

यह सुनकर शीघ्रतासे जो भी कुछ उनके यहाँ रोटी, पूड़ी, हलुआ, खीर, मालपुआ, लड्डू, दाल, भात, साग, चटनी, फल-

जितने प्रकारके भी भक्ष्य, भोज्य, लेह्य और चोष्य पदार्थ
वको सज कर श्रीकृष्णके समीप जानेका उद्यत हुईं।

छप्पय

बोले अबके जाउ विप्रपत्निनि के ढिग तुम।
अन्न देहि ले अवसि स्वादतैं खावैं सब हम॥
सुनि बोले गोपाल-यार ! क्यों हँसी कराते।
क्यों उन द्विजननि नारि निकट अब हमें पठाते।
नँद नंदन हँसिके कहें-दूध चैन देने नहीं।
ग्वाल दुआर हु गायकी, खिर मनत लेने नहीं॥

द्विज-पत्नियोंको दामोदरके दर्शन

(९४३)

श्यामं हिरण्यपरिधिं वनमाल्यबर्ह-
धातु प्रवालनटवेषमनुव्रतांसे ।
विन्यस्तहस्तमितरेण धुनानमब्जम्,
कर्णोत्पलालककपोलमुखाब्जहासम् ॥*

(श्रीभा० १० स्क० २३ अ० २२ श्लो०)

छप्पय

चले फेरि सब ग्वाल गये द्विज-पत्निनि पाहीं ।
हरिकी सबई बात विनयतैं तिनहिं सुनाईं ॥
अति प्रसन्न सब भईं धन्य निज जीवन जान्यो ।
आज होहि हरि दरश सुदिन सबने अति मान्यो ॥
मीठे खट्टे नमकयुत, कटुक कसैले चरपरे ।
अति उज्वल वर थार सब, षडरस व्यञ्जनतैं भरे ॥

जीवनके समस्त पुरुषार्थ भगवान्के दर्शनोंके ही लिये हैं नन्दनन्दनके दर्शन हो जायँ, जीवन सफल हो जाय किन्तु उनके

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! द्विज-पत्नियोंने गोपोंसे घिरे श्यामसुन्दरको देखा उनका शरीर श्याम था, स्वर्ण वर्णका पीताम्बर पहिने थे वनमाला, मोरपङ्ख विविध धातु तथा नवीन पल्लव आदि वस्तुओंसे नटवर वेष बनाये हुए थे, उनका एक हाथ तो सखाके कंधेपर था, दूसरेसे क्रीडा-कमलको घुमा रहे थे। कानोंमें कमलपुष्पोंके कपोलोंपर अलकोंकी और मुखारविन्दपर मनोहर मुसकानकी अद्भुत छटा थी।"

दर्शन कहाँ जानेसे हो सकेंगे क्या करनेसे होंगे, कब होंगे कैसे होंगे, इसका कुछ निश्चय नहीं। वे एक स्थानमें रहते नहीं। एक वनसे दूसरे वनमें दूसरे वनसे तीसरे वनमें घूमते रहते हैं। वे साधन साध्य हैं भी नहीं जो किसी एक साधनसे मिल जायँ। वे किसी एक स्थानके बन्धनमें भी नहीं, कि वहाँ जानेपर मिल जायँ। उनकी प्राप्ति तो एकमात्र सच्ची लगनसे होती है। तुम कहीं भी मत जाओ, जहाँ हो वहीं रहो निरन्तर मनसे उनका ही चिन्तन करते रहो कानसे उनके ही गुणोंको सुनते रहो। परस्परमें बातें करो तो उन्हींकी सम्बन्धकी करो इस प्रकार तद्गत होनेसे–समस्त चित्तकी वृत्तियोंको उनमें ही लगा देनेसे– वे स्वयं ही अपने आप आजायँगे। आकर अपने आनेकी सूचना अपने अनन्य जनों द्वारा देंगे। उनके तदीय अनन्य जन आगे चलकर उनके समीप पहुँचा देंगे। जहाँ प्रभुके आगमनका शुभ समाचार सुना जहाँ तदीय आगे आगे हमें लेकर चल पड़े वहाँ श्रीकृष्ण-दर्शनमें फिर देरी नहीं होती।

सूतजी कहते हैं– 'मुनियो! कृष्णका आगमन सुनते ही वे द्विज पत्नियाँ सोने चाँदीके सुन्दर सुन्दर पात्रोंमें सुन्दर स्वादिष्ट अनेक गुणयुक्त चार प्रकारके हव्य अन्न रखकर वे उत्सुकताके साथ चलीं। उन्हें प्रियतमके मिलनेकी चटपटी लगी हुई थी। जैसे अत्यन्त प्यासा पपीहा स्वाती बूँदकी आशामें वर्षामें इधरसे उधर दौड़ता है, जैसे रात्रिभरकी वियोगिनी चकवी दिन होते ही उसपार बैठे अपने पतिकी ओर दौड़ती है, जैसे नदियाँ तेज वेगसे टेढ़ी मेढ़ी चलके अपने प्राणवल्लभ पयानिधिके पास उससे सङ्गम करने दौड़ती हैं, उसी प्रकार वे स्वयं सज-धजकर भाजनोंको सजा बजाकर श्यामसुन्दरके समीप शीघ्रतासे जा रहीं थीं।"

ब्राह्मणोंने देखा–ये सब झुण्डकी झुण्ड इतनी तैयारियाँ करके कहाँ जा रही हैं। वे उन्हें व्यग्रतासे वनकी ओर जाते देखकर दौड़कर उनके समीप आये। उनके पति, भाई, बन्धु, पुत्र तथा अन्यान्य सगे सम्बन्धियोंने उनका मार्ग रोक लिया। सबने कहा—"कहाँ जा रही हो ?"

इन सबने कहा—"श्यामसुन्दर गौएँ चराते हुए यहाँ समीप आये हुए हैं, हम सब उन्हें भोजन कराने साथ साथ जा रही हैं।"

उनके सम्बन्धियोंने कहा—"यहाँ कितना कार्य पड़ा है! कल यज्ञकी पूर्णाहुति है। कितना सामान बन ना है। तुम इधर उधर जानेमें ही व्यर्थ समय बिता रही हो।"

उन्होंने कहा—"व्यर्थ नहीं यही तो सार्थक समय है। हमारा सब कुछ श्यामसुन्दरके ही लिये है।"

वे क्रोध करके बोले—"श्यामसुन्दर ही सब कुछ हो गये। हम कुछ भी नहीं रहे, हमारे लिये मानो तुम्हारा कोई कर्तव्य ही ही नहीं।"

उन द्विज पत्नियोंने कहा—"तुम सबके लिये कर्तव्य उन्हींके सम्बन्धसे है। वे ही सबके पूजनीय हैं सर्वस्व हैं, जो उनसे प्यार करता है, उनके उपासक उनसे भी प्यार करते हैं। सब नाते संसारका लेकर नहीं हैं कि ये हमारे पति हैं ये हमारे देवर हैं नाते तो नन्दनन्दनके सम्बन्धसे ही हैं।"

उनमेंसे गुरुओंने क्रोध करके कहा—"अच्छी बात है, जब वे ही तुम्हारे सब कुछ हैं, तो अब उनके ही पास रह जाना, लौटकर यहाँ आनेका काम नहीं है।"

सम्बन्धियोंकी इस प्रकार धमकी देनेपर भी वे अपने संकल्पसे विचलित नहीं हुईं। उन्होंने गोपीजन-वल्लभ व्रज-जीवनधन श्यामसुन्दरके निकट जानेमें तनिक भी शिथिलता

हीं थी। वे उनकी बातोंकी ओर कुछ भी ध्यान न देकर श्याम-सुन्दरके समीप चल ही तो दीं। चलते समय उनके पैरोंके बड़े बड़े पाइजेब आदि आभूषण छम्म छम्म करके बज रहे थे। एड़ी तक लटकती हुई फुन्दोंदार चोटियाँ हिल रहीं थीं। हाथोंपर स्वच्छ शुभ्र वस्त्रोंसे ढके हुए पात्र रखे थे। वायु वेगसे उनके वस्त्र हट जाते और उनमेंसे सुगन्ध फैलकर दशों दिशाओंको सुगन्ध मय बना देती। उनकी श्वाँससे सुगन्ध निकल रही थी, उनके शरीरसे, वस्त्रोंसे तथा षड्रस व्यञ्जनोंसे भी सुगन्ध निकल रही थी। उनके विचारोंकी भी बड़ी सुन्दर सब ओर फैलनेवाली सुगन्धि थी।

इधर श्यामसुन्दर भी प्रतीक्षामें बैठे थे. उन्हें भी अपनी प्रेमुपता भक्ता यज्ञ पत्नियोंसे मिलनकी चटपटी लगी थी। भक्त भगवानके लिये उतना उत्सुक नहीं होता, जितना भगवान् भक्तसे मिलनेका समुत्सुक बने रहते हैं। भगवानने सोचा— 'गोपोंको गये तो बड़ी देर हो गयी। वे अब तक लौटे क्यों नहीं। सम्भव है अन्न न रहा हो। किसे बता रही हों। यह तो हो नहीं सकता कि वे सुनें और मेरे समीप न आवें। भगवान् को भी विकलता पड रहा थी, वे भी एक सखाके कंधेपर हाथ रखे इधरसे उधर घूम रहे थे। बार बार झाँककर देख रहे थे, कि कहीं इधरसे तो नहीं आरहीं है कभी टीलेपर चढ़ जाते कभी दूर तक दृष्टि दौड़ाते इसी समय उन्हें छम्म छम्मकी ध्वनि सुनायी दी। भगवान्‌का हृदय बाँसों उछलने लगा। अपने अनुरक्त भक्तके मिलनमें ऐसा ही सुख होता है।

द्विज पत्नियोंने भी दूरसे सखाके कंधेपर हाथ रखे नटवरको देखा। अब तक वे श्यामसुन्दरकी प्रशंसा केवल कानोंसे सुनती ही रहीं थीं, उन्होंने आज तक उन्हें देखा नहीं था। अब उस साँवरी सूरत मोहनी मूरतको देखकर वे अबलायें सबला बन

गयीं उनके नेत्र तृप्त हो गये. वे अपलक भावसे मनमोहनके मुखकी मधुर माधुरीका मत्त होकर पान करने लगे। नवीन जलधरके समान श्यामका श्रीअग श्यामवर्णका थ . चटक-दार, सुवर्ण वर्णका पीताम्बर उनके श्रीअंगमें लिपट रहा था मनों श्यामघनसे बिजली लिपट गयी हो। उनके शिरपर मोरमुकुट शोभा दे रहा था। श्री अंगमें गेरू, सेलखडी यमुना-रज, घिसे कंकड ये गोपोंने शृङ्गारके लिये लगा दिये थे इससे उनकी शोभा विचित्र बन गयी थी। उनके चरण मुख तथा कर कमलोंके सदृश कोमल लाल और सुहावने थे. कमलोंकी माला वे धारण किये हुए थे कानोंमें भी कमल लगाये हुए थे। हाथसे भी क्रीडा कमल घुमा रहे थे। कपोलोंपर अलकावल विथुर रही था, मानों पंक्तिबद्ध अटके हुए मधुकर कमलके रसका पान कर रहे हों। मनोहर मुखारविंदपर मंद मंद मुसकान छा रही थी।

श्यामसुदरकी उस भुवन मोहन मूरतिको वे सब अतःकरणमें ले गयीं और मनसे ही उनका बड़ी देर तक आलिङ्गन करती रहीं। कि कल तक मनसे आलिङ्गन करते करते वे तन्मय हो गयीं और इस प्रकार वे अपने हृदयके सन्तापको शान्त करने लगीं।

इसपर शौनकजीने पूछा—"सूतजी ! मनसे आलिङ्गन करनेसे हृदयका सताप शान्त कैसे होता होगा ?"

सूतजी बोले—"भगवन ! यह सब मनका ही तो विलास है; जो हम मनसे सोचते हैं वही कर्मेन्द्रियोंसे करने लगते हैं। यथार्थ मिलन तो मनका ही है। शारीरिक मिलन तो अत्यन्त हेय है. वह तो मनकी स्मृतिको जागृत करनेके लिये है। मन न मिला हो तो शरीरके मिलनेसे कोई लाभ नहीं। मन मिला है तो शरीर कहीं भी पड़ा रहे मनसे सदा एक ही बने

होते हैं। जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति तीन अवस्थायें हैं इन तीनोंमें पृथक करनेके निमित्त चौथी तुर्यावस्थाकी भी कल्पना की है। वास्तवमें अवस्थायें तीन ही हैं। इन तीनों अवस्थाओंके अभिमानी क्रमशः विश्व तैजस और प्राज्ञ ये तीन हैं। जाग्रत अवस्थामें उसके अभिमानी विश्वको पाकर अहं वृत्तियाँ विश्वको देखती हैं उसीका मान करती हैं, किन्तु सुषुप्ति अवस्थामें प्राज्ञको पाकर अहं वृत्तियाँ उसीमें तन्मय हो जाती हैं। प्रगाढ़ निद्रामें न तो स्वप्न ही देखता है न कोई स्मृति ही रहती है, एक प्रकारके अपूर्व सुखका अनुभव होता है। जब जागते हैं, तब कहते हैं "आज बड़े सुखसे सोये; बड़ी मीठी नींद आयी। कुछ भी भान नहीं रहा "

अब सोचिये कुछ भी भान नहीं रहा, तो यह किसने बताया कि बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ।" वास्तवमें दुःख तो प्राज्ञको न पाकर इधर उधर भटकनेमें ही है। अहं वृत्तियाँ जब तक असत् पदार्थोंमें सांसारिक सम्बन्धमें भटकेंगी, जब तक वे हाड़ मांसके शरीरके आलिङ्गनके लिये उत्सुक बनी रहेंगी तब तक चैतन्यघन स्वरूप श्यामसुन्दर भी प्राप्त कैसे होंगी। जब जीव इन सब संसारी सम्बन्धोंको, इन भौतिक पदार्थोंकी भोगवासनाको छोड़कर श्यामसुन्दरकी ओर बढ़ेगा, तो उसे ब्रह्मसंस्पर्श प्राप्त होगा। श्यामसुन्दर तो दिव्य हैं, चिन्मय हैं, उनका मानसिक संस्पर्श ही समस्त संतापको नाश करता है। फिर जो विकलता बढ़ती है वह प्रेम वृद्धिके निमित्त होती है। जब तक जीव धनमें विषयोंके भोगोंमें संसारी सम्बन्धोंमें आसक्त रहता है तब तक श्यामसुन्दर उसे नहीं बुलाते। जब वे देखते हैं सब प्रकारकी कामनाओंको छोड़कर केवल मेरे दर्शनोंकी ही लालसा आयी है तो वे स्वयं जाकर उसे अपना लेते हैं, उसका 'सुस्वागतम्' कहकर स्वागत करते हैं।

शौनकजीने कहा—"हाँ, सूतजी ! ठीक है। कथा कहिये।"

सूतजी बोले—"हाँ तो जब थाल सजाये बिजली-सी चमकती हुई उन चन्द्रवदनियाको भगवान्ने आते देखा तो मंद मंद मुसकराते हुए हँसते हँसते वे बोले—"आइये। आइये। स्वागतम्, स्वागतम्। मंगलम् मंगलम्। साधु साधु। आप सबका आना शुभ हुआ। हम आप सबका स्वागत करते हैं। थालोंको घासपर रखिये, यहाँ हमारे समीप आकर बैठिये। हमारे योग्य कोई कार्य हो तो बताओ। हम तुम्हारा कौनसा प्रिय कार्य करें। कहो कैसे कष्ट किया ?"

अमृतमें सने हुए मदनमोहनके मधुमति मधुर हास्य युक्त वचनोंको सुनकर द्विजपत्नियोंका रोम रोम खिल उठा। अहा, ये कितने सरस हैं, कितने आकर्षक हैं कितने हँसमुख हैं, कितने विनोदी हैं। कैसे आत्मीयतासे प्रश्न पूछते हैं। इन्होंने हमारे मनको मथ दिया। प्रति क्षण ये ही हमें व्याकुल बनाये रहते हैं, इनकी ही मीठी मीठी स्मृति हमारे हृदयमें चुभ चुभ कर एक न एक मधुमयी वेदनाको बनाये रखती है। ये पूछ रहे हैं क्यों आयीं। बताओ इसका क्या उत्तर दें ? ये ही तो खाचकर ले आये हैं। नहीं हमारे सम्बन्धी तो बार बार मना कर रहे थे, उधर मत जाना। किन्तु पैर अपने आप इधर ही चले आये। कुछ तो इन्हें उत्तर देना ही होगा। अतः लजाती हुई व नीचे देखते देखते ही बोलीं—"आपके दर्शनोंके लिये आई हैं।"

समझते हैं। इसीलिये वे मुझे अपना अत्यन्त सुहृद समझकर प्रेमजनके समान-मझे सुहृद के समान-मुझमें ही निष्कपटभावसे निरंतर अहैतुकी भक्ति किया करते हैं।' लोग कहते हैं, ये हमें प्राणोंके समान प्यारे हैं। मैं प्राणोंका भी प्राण हूँ। मन, बुद्धि, देह, स्त्री, पुत्र, पति तथा धन ये सब मेरी संनिधिसे ही प्रिय प्रतीत होते हैं। क्यों कि मैं आत्माका भी आत्मा परमात्मा हूँ। मुझसे प्यारा और इस संसारमें दूसरा कौन हो सकता है? प्यारेके दर्शन करना यह तो उचित ही है। दर्शन तुम पेट भर करलो और फिर अपने डेरेका मार्ग पकड़ो। दर्शन करके लौट जाओ।"

यह सुनते ही मानों द्विजपत्नियोंके ऊपर तो वज्र पड़ गया हो। ये पुरुष कितने वज्र हृदयके होते हैं, इतने सौंदर्यमें इतनी सुकुमारतामें इतनी कठोरता भी छिपी रहती है। ये कहते हैं यहाँसे चली जाओ।" यह सोचकर वे बड़े दुःखसे बोलीं—"कहाँ लौट जायें, श्यामसुन्दर! अब हमारे लिय कोई लौटनेको स्थान शेष रह गया है क्या?"

भगवान् सरलतासे बोले—"अपने पतियोंके पास यज्ञशालामें ही लौट जाओ जहाँसे तुम आई हो।"

"वहाँ जाकर हम क्या करेंगी, प्राणवल्लभ! भर्राये हुए गद्गद कंठमें द्विजपत्नियोंने कहा।

भगवान् बोले—"देखो जिसके साथ बैठकर गाँठ जोड़कर यज्ञ किया जाय उसी को में पत्नीत्व होता है। पत्नीके बिना पुरुष यज्ञ करनेका अधिकारी नहीं। पत्नीके बिना यज्ञ पूरा भी नहीं होता। तुम्हारे पति यज्ञ कर रहे हैं, यज्ञकी पूर्णाहुतिमें उन्हें तुम्हारी आवश्यकता है। पत्नीके बिना गृहस्थ धर्म हो ही नहीं सकता। तुम्हारे पति तुम्हारी प्रतीक्षामें बैठे होंगे।"

द्विजपत्नियोंने अत्यन्त दुःखके साथ अश्रु विमोचन करते

हुए कहा—"श्यामसुन्दर ! तुम इतने सुन्दर होकर ऐसी कठोर बात अपनी प्यारी प्यारी वाणीसे कैसे निकाल रहे हो। हाय! हम तो सब छोड़ कर तुम्हारे चरणोंकी शरणमें आयी हैं तुम हमें दुतकार रहे हो। कह रहे हो यहाँसे चली जाओ। भला, यह भी कोई अच्छी बात है। इसीका नाम अपनाना है क्या? सज्जन पुरुष जिसे एक बार अपना लेते हैं उसे जीवन-पर्यन्त कभी छोड़ते नहीं। हम और कुछ नहीं चाहतीं आपका उच्छिष्ट प्रसाद चाहती हैं आपके चरणोंमें चढ़ी तुलसीकी मालाको अपने जूड़ोंमें खुरसना चाहती हैं।

भगवान् बोले—"देखो, अभी तुम्हें गृहस्थमें ही रहना चाहिये। तुम्हारे पति, पुत्र तथा बन्धु बान्धवोंको तुम्हारी अभी आवश्यकता है।"

द्विजपत्नियोंने रोते रोते कहा—"उन्हें आवश्यकता हो, हमें तो उनकी आवश्यकता नहीं है। जब यथार्थ पति आप हमें मिल गये, तो फिर उन्हें लेकर हम क्या करेंगी। आपका धाम तो वह है, जहाँ जाकर किसीको लौटना नहीं पड़ता। फिर आप हमें लौटाकर अपने वेद वाक्योंको असत्य क्यों कर रहे हैं। रही बात पुत्र तथा स्वजनोंकी आवश्यकताकी बात। सो, उन्हें हमारी आवश्यकता नहीं है। हम उनकी इच्छाके विरुद्ध—उनकी आज्ञाकी अवहेलना करके—यहाँ आयी हैं। आप हमें बल पूर्वक वहाँ भेज भी देंगे तो भी वे हमें अब ग्रहण न करेंगे उन्होंने तो स्पष्ट कह दिया है। अब यहाँ मत आना वहीं रहना। इसलिये अब आप ही अपने चरणोंमें हमें शरण दीजिये। आप ही हम निराश्रिताओंको आश्रय प्रदान कीजिये।"

भगवान्ने कहा—"ऐसी बात नहीं है। उन लोगोंने बिना समझे बूझे रोषमें भर कर ऐसा भले कह दी होगा। अब जब

'तुम मेरी आज्ञासे वहाँ लौटकर जाओगी, तो तुम्हारे पति, माता, पिता, भाई और पुत्रादि तथा अन्य स्वजन कुटुम्बी सगे सम्बन्धी तुम्हारा अवज्ञा नहीं करेंगे। प्रत्युत आदर ही करेंगे।'

द्विजपत्नियाँ उदास हो गयीं। वे कुछ न बोलीं अश्रु बहाती हुई नीचे देखने लगीं। तब भगवान्ने अपनी शक्तिसे स्वर्गीय देवताओंका आह्वान किया जो सब कर्मोंके साक्षी हैं। उन्हें दिखा कर भगवान बोले—"देखो, देव गण भी मेरी बातका अनुमोदन कर रहे हैं। घर जानेपर कोई तुम्हारी निन्दा न करेगा, तुम निर्भय होकर लौट जाओ।"

अत्यन्त ही लजाते हुए द्विजपत्नियोंने कहा—"घरवाले प्रसन्न हो जायँ, हम इतना ही तो नहीं चाहतीं। हम तो आपके श्रीअंगका सङ्ग चाहती हैं।"

भगवानने कहा—'देखो, यह लोगोंकी धारणा भ्रम-मूलक है, कि अनुराग या प्रेम अङ्गसङ्गसे ही होता है, अङ्गसङ्ग तो अत्यन्त निकृष्ट सुख है, क्षण भरका है, अन्तमें उससे दुःख ही दुःख होता है। यद्यपि मेरा अङ्गसङ्ग संसारी पुरुषोंके अङ्ग सङ्गके सदृश नहीं है। मेरा दिव्य चिन्मय वपु है। मेरे अङ्ग सङ्गसे अत्यधिक अनुराग बढ़ता है, किन्तु केवल अङ्ग सङ्ग ही प्रीति या अनुरागका प्रधान कारण हो सो बात नहीं है। मनसे मुझमें अनुराग करो। अपने मनको मुझमें मिला दो। सदा चित्तमें मेरा चिन्तन करती हुई मेरे ध्यानमें निमग्न रहो। मुझमें चित्त लगानेसे अविलम्ब मुझे प्राप्त हो जाओगी।"

द्विजपत्नियोंने कहा—"आपकी आज्ञा तो शिरोधार्य है, किन्तु हमारी इच्छा है अपने हाथसे आपको भोजन परस कर खिला कर तब जायँ।"

भगवान्ने कहा —"कोई बात नहीं थी, किन्तु तुम्हारे पति प्रतीक्षामें बैठे हैं, तुम्हारे बिना उनका कार्य हो नहीं सकता। इसलिये जाकर तुम उनका यज्ञ समाप्त करो।"

द्विजपत्नियोंने कहा—"प्रभो ! हम मनसे तो कभी जा नहीं सकतीं, यह शरीर है इसे आप चाहे जहाँ भेज दें।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! भगवान्की आज्ञा शिरोधार्य करके वे द्विजपत्नियाँ इच्छा न रहनेपर भी फिर लौटकर अपने सम्बन्धियोंके समीप यज्ञशालामें चली गयीं। अपनी पत्नियोंको पाकर वे वेदपाठी द्विज परम प्रमुदित हुए, उन्होंने न उनका निरादर किया न एक भी अप्रिय शब्द ही कहा। बड़े प्रेमसे उन्हें साथ लेकर यज्ञकी पूर्णाहुति की। बड़ी धूमधामसे यज्ञ समाप्त हुआ।'

इसपर शौनकजीने पूछा—'सूतजी ! जब द्विजपत्नियाँ सब कुछ छोड़कर भगवान्की शरणमें गयीं, तो फिर भगवान्ने उन्हें लौटा क्यों दिया। भगवान् तो शरणागत वत्सल हैं, जो उनकी शरणमें जाता है, उसे अपना लेते हैं। उसे कभी निराश नहीं करते।"

सूतजीने कहा—"महाराज ! निराश तो भगवान्ने नहीं किया। उन्हें अपना लिया। एक स्थानमें तो ऐसा वर्णन आता है, कि जब द्विजपत्नियोंने बहुत आग्रह किया, तो उसी समय गोलोकसे दिव्य विमान आये, उनमें उन सबके दिव्य देहको गोलोक भेजकर अपनी सहचरी बना लिया। उनकी छाया बनाकर द्विजोंके यज्ञमें भेज दिया। कर्मकांडी द्विज इस रहस्यको क्या समझ सकते थे, उन्होंने उन्हें ही अपनी यथार्थ पत्नी समझा। जैसे भगवान्ने छायाकी सीता बनाकर रख दी थी उसे रावण हर ले गया।

शौनकजीने पूछा—"सूतजी ! भगवान् यह छायाकी फिर

क्यों बनाते हैं।"

सूतजी बोले—"महाराज ! भगवान्‌का विनोद भी तो किसी प्रकार चलता रहे। ससार कर्मवासनाओंसे ही चल रहा है। कर्मवासना न हो, तो ससारका खेल एक दिन भी न चले। संसारमें सभी जीव कर्मोंके अधीन बद्ध हों, तब तो ससार रौरव नरक बन जाय। बद्ध जीव इन ससारी भोगोंको ही सब कुछ समझते हैं। पैसोंके लिये चाहें जितना पाप करालो। धन इकट्ठा करनेको चाहे जितना झूठ बुलवालो। कामवासनाकी पूर्तिके लिये लोग अनेक प्रकारके वेष बनाते हैं, धोखा देते हैं ठगते हैं। कामिनी, काचन और कीर्तिके लिये पाप करनेसे भी नहीं चूकते। यदि सभी स्वार्थी ही हो जायँ, तो संसारसे दया, धर्म, परोपकार, प्रेम, भक्ति आदि सद्‌गुण लुप्त ही हो जायँ। स्वेच्छासे अतिथि सत्कार करे कौन, भगवान्‌का नाम ले कौन, उनकी कथा कौन कहे। इसीलिये बद्ध जीवोंके साथ कुछ ऐसे मुक्त जीव भी भगवान्‌की आज्ञासे इस पृथिवीपर उत्पन्न होते हैं। जैसे राजाके गुप्तचर साधारण लोगोंके वेषमें रहकर साधारण लोगोंमें ही मिल जाते हैं। जेलमें जाकर जेली बन जाते हैं। उन्हें कोई पहिचान नहीं सकता कि ये राजकर्मचारी हैं किन्तु भेदिया उन्हें जानते हैं, इसीप्रकार भगवान्‌के जो अनन्य हैं उनके हृदयमें भी भगवान् जान बूझकर कुछ वासनायें भर देते हैं। वे अपने यथार्थ-रूपसे तो भगवान्‌के साथ विहार करते हैं छाया-रूपसे यहाँ मनुष्योंमें रहकर मनुष्योंके-से आचरण करते हैं। लोगोंको सेवाका पाठ पढाते हैं, परोपकार सिखाते हैं। स्वय कष्ट सहकर दूसरोंका कार्य करते हैं। भगवान्‌की सेवा पूजा करते हैं। जय विजयके मनमें युद्धकी वासना भगवान्‌ने देदी। इसलिये उनके छाया-शरीरसे रावण कुंभकरणका जन्म हुआ। एक गोपीके मनमें प्रेमकी वासना देदी।

वह मीरा बाई बनकर पृथिवीपर प्रेमका प्रसार करती रही। इसीप्रकार उन यज्ञ पत्नियोंकी भी कुछ वासनायें शेष थीं, अतः उनमेंसे बहुत-सी पृथिवीपर फिर उत्पन्न होकर भगवत् पूजा परोपकार करके पुनः अपने प्रतिविम्बको विम्बमें मिलाती हैं। भगवान्‌की सोलह सहस्र पत्नियाँ थीं। भगवानने उन्हें अपनाया था, पाणिग्रहण किया फिर भी गोपोंने उन्हें छीन लिया। एक स्थानमें आता है वे फिर सबकी सब वेश्या बन गयीं, वेश्यावृत्ति करने लगीं। किसी मुनिने उन्हें उपदेश दिया तो उस वेश्या-वृत्ति करते करते उनके बताये साधनसे अपने विम्बमें-मिल गयीं। यह सब भगवानकी क्रीड़ा हैं। भगवान् जैसे रखें वैसे रहना चाहिये; उनकी इच्छामें अपनी इच्छा मिला देनी चाहिये। भगवानने उन्हें छाया रूपसे या जैसे रखा वैसे वे रहीं। एक ब्राह्मणने अपनी स्त्रीको आने ही नहीं दिया, बाँधकर रख दिया। इससे वह इस पांचभौतिक शरीरको ही छोड़ गयी।

इसपर शौनकजीने कहा—"सूतजी! इस विषयको विस्तारसे सुनाइये। फिर भगवान्‌ने क्या किया यह भी सुनावें।"

सूतजी बोले—"अच्छी बात है महाराज! अब आगेकी कथा आप दत्तचित्त होकर श्रवण करें।"

छप्पय

लै व्यञ्जन चलि दई निहारे आगे नटवर।
छैल चिकनियाँ बने सजे शोभित अति सुखकर॥
द्विज-पतिनिनि लखि हँसे कहें-हे भामिनि आओ।
आईं दरशन हेतु करे अब दरशन जाओ॥
सुनि अप्रिय अच्युत वचन, बोलीं तुम प्रिय शिरोमनि।
प्रथम बुलावत खींचिकें, दुतकारो पुनि कठिन बनि॥

—::※::—

द्विजपत्नियोंका अनुपम प्रेम

(१४४)

तत्रैका विधृता भर्त्रा भगवन्तं यथाश्रुतम्।
हृदोपगुह्य विजहौ देहं कर्मानुबन्धनम्॥ *
(श्रीभा० १० स्क० २३ अ० ३५ श्लो०)

छप्पय

पुनि बोले घनश्याम—सुमुखि ! मखशाला जाओ।
यज्ञ काज करि सतत चित्त मम चरन लगाओ॥
हृदय हृदयतैं मिलै एकता मनके माहीं।
अङ्गसङ्ग अनुराग प्रीतिको कारन नाहीं॥
हरि आयसु सुनि मन तहाँ, धरि तनतैं मखमहँ गई।
दरश श्यामके पाइकैं, धन्य विप्र पत्नी भई॥

शरीरको बन्धनमें डाल लेनेसे हृदय तो बन्धनमें नहीं डाला जा सकता। जब तक जीव अज्ञान वश शरीरको ही आत्मा मानकर उसीके सुखमें सुखी और उसीके दुखमें दुखी होता रहता है तब तक ही वह शरीरका चिन्ता करता है। जब वह

*श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"मुनियो ! उन द्विजपत्नियों मेंसे एकको उसके पति ने बल पूर्वक रोक लिया था। तब उसने भगवान्का स्वरूप जैसा सुनाया। उसेही हृदयमें धारण करके कर्मके परिणामभूत अपने शरीर का परित्याग कर दिया।"

शारीरिक स्थितिसे ऊँचा उठ जाता है, अपनेको देहसे पृथक अनुभव करता है, तो शरीरको वस्त्रकी भाँति जब चाहे उतार कर फेंक दे। प्रेमका सम्बन्ध शरीरसे न होकर मनसे है। मन जिसमें रम गया उसका हो गया। अतर इतना ही है, कि अनित्य वस्तुओंमें मन स्थाई नहीं होता, टिकता नहीं। एकसे दूसरेपर दौड़ता रहता है, किन्तु नित्यसे प्रेम करनेपर सदाके लिये उसीका हो जाता है। श्रीकृष्ण अपने निज लोकमें निरन्तर प्रेमकी ही क्रीड़ा किया करते हैं, वहाँके समस्त उपकरण समस्त लीलायें नित्य हैं, चिन्मय हैं, अविनाशी हैं। कभ वे अपने नित्य परिकरके साथ अवनिपर अवतरित होकर यहाँ भी उन्हीं लीलाओंका अनुकरण करते हैं। बहुतसे साधन सिद्ध भक्त जो उनसे मिलनेको न जाने कबसे छटपटा रहे हैं, उन्हें अपनेमें मिलाते हैं, उनके नाशवान् प्राकृत शरीरको दिव्य चिन्मय बनाकर अपने परिकरमें प्रविष्ट कर लेते हैं। उसका फिर आवागमन सदाके लिये छूट जाता है। उसका नित्य लीलामें प्रवेश हो जाता है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इन यज्ञीय विप्रोंकी पत्नियोंका प्रेम अलौकिक था। इनकी निष्ठा परिपूर्ण थी। ये कोई इधर उधर घूमने वाली स्वैरिणी तो थीं नहीं, कि जिसका सुन्दर रूप देखा रीझ गईं। ये तो कुलवती सती साध्वी धर्म पत्नियाँ थीं। पूर्वजन्मोंके संस्कारोंसे अनेक जन्मके सुकृतोंसे इनका अनुराग नंदनंदनके चरणारविन्दोंमें हो गया। किसी संतके मुखसे सुनलिया, कि साक्षात् परब्रह्म परमात्मा ब्रजमें ब्रजराज नंदके यहाँ अवतीर्ण हुए हैं। सुनते ही उन्हें दृढ़ विश्वास हो गया। तर्कका अवसर ही न मिला, कि क्या ऐसा संभव हो सकता है, अनन्त कोटि ब्रह्माण्डनायक अहीरोंके यहाँ कैसे अवतरित होगा, ऐसे कुतर्क तो पूर्व जन्मके किन्हीं अंतरायोंके कारण होते हैं, उनका अन्तःकरण तो जन्मसे ही शुद्ध था। किन्त प्रारब्ध वश उन्हें

पति ऐसे मिले, कि वे कर्मोंको ही सब कुछ समझते थे, अभी तक उनके हृदयमें भक्तिका अंकुर उत्पन्न नहीं हुआ था। बीज तो उनके अन्त करणमें था ही।

भक्तिका सम्बन्ध हृदयसे होता है। किसीके अन्तःकरणमें भक्ति है, दूसरेके में नहीं है, किन्तु वह उसका विरोध नहीं करता, तो दोनोंमें कोई कलह नहीं होती। जहाँ एक व्यक्ति अपने अधीन पुरुषोंको बलपूर्वक अपनी बात मनानेको विवश करता है, वहाँ कलह होती है और कभी कभी प्राणान्त तककी नौबत आ जाती है। हिरण्यकशिपु प्रह्लादजी से बल-पूर्वक अपनी बात मनवाना चाहता था। इसीपर कलह हुई हिरण्यकशिपुकी मृत्यु हुई। मनसे जो बात न मानी जाय, ऊपरसे विवश करके हा हूँ कराई जाय, तो वह मान्यता चलती नहीं। जिनका मन मोहनकी माधुरीमें उलझा हुआ है, उन्हें शारीरिक बन्धन सुलझा नहीं सकते।

हो और उसमें घरवाले रोडे अटकावें तो, उसे विवश हो जान पड़ता है।

भगवानका आगमन सुनकर वे द्विजपत्नियाँ विवश हो गः उनके चरणोंमें जानेके लिये। घरवाले उन्हें रोक रहे थे, किन्तु वे रुकीं नहीं। उन लोगोंने बहुत अधिक विरोध भी नहीं किया। वाणीसे ही मना करते रहे, शारीरिक बलका प्रयोग नहीं किया। वे सब बडी थीं सयानी थीं, पुत्रवती थीं। इस अवस्थामें बल प्रयोग करना उचित नहीं होता।

एक उनमें अत्यंत क्रोधी ब्राह्मण थे। उनकी पत्नी तो सती साध्वी और भगवद्भक्ता थी। वह निरन्तर श्रीकृष्णके रूपका ही चिन्तन करती रहती। साथ ही घरके कार्योंको भी करती रहती।

जिस दिन भगवान् पधारे और सब उसकी सखी सहेली थालोंको सजा-सजाकर उनके लिये भोजन ले जा रहीं थीं, उस दिन वह भी श्रीकृष्णके समीप जानेको उद्यत हुई। उसने थाल में सब वस्तुएँ सजालीं ऊपरसे स्वच्छ सफेद वस्त्र भी ढक लिया। सोलह शृंगार करके वस्त्राभूषणोंसे अलङ्कृत होकर, थाल उठाकर वह ज्यों ही चली, त्योंही उसका पति आ गया। उसने अभी तक भोजन नहीं किया था। एक तो वह स्वभावसे ही क्रोधी था, दूसरे भूखमें क्रोध और भी अधिक बढ़ जाता है। उसने पूछा—"आज सज धजकर कहाँकी तैयारियाँ हो रही हैं?

उसने सरलताके साथ कहा—"यहाँ समीपमें ही सखाओंके सहित श्यामसुन्दर आये हैं। मेरी सब सखी सहेलियाँ वहीं जा रही हैं मैं भी उनके दर्शन कर आऊँ।"

उसने क्रोधमें भरकर कहा—"कौन श्यामसुन्दर वह नंद अहीरका छोकरा! हाँ, लोग उसे भगवान भगवान् तो कहते हैं,

किन्तु मैं उसे नहीं मानता।"

सरलताके साथ उसका धर्म पत्नीने कहा—"आप न मानें यह दूसरी बात है, किन्तु मुझे दर्शनासे क्यों रोकते हैं। मैं सबके साथ जाऊँगी। मनके साथ दर्शन करके लौट आऊँगा।"

उस ब्राह्मणने कहा—"स्त्रियोंको परपुरुषको देखना पाप है। फिर अभी मैंने भोजन भी तो नहीं किया। बिना मुझे भोजन कराये तू कैसे जायेगी ?"

उसने कहा—"श्रीकृष्ण परपुरुष नहीं हैं वे तो परात्पर पुरुष हैं, सबके आत्मा हैं, मनके पति हैं। भोजन मैं परसे देती हूँ। आप भोजन करलें, मेरी सहेला तैयार होकर बाहर खड़ी हैं। मैं पिछड़ जाऊँगी। आप कृपा करो, मुझे जानेकी आज्ञा प्रदान करो।"

उस क्रोधी ब्राह्मणने क्रोधमें भरकर कहा—"नहीं, मैं आज्ञा कभी नहीं दे सकता। मैं तुझे कदापि वहाँ न जाने दूँगा। और सब जाती हैं तो जायँ। तू नहीं जा सकती।"

इसने दृढताके स्वरमें कहा—"श्यामसुन्दरके दर्शनोंको तो मैं अवश्य जाऊँगी, अवश्य जाऊँगी किसीके रोकनेसे भी न रुकूँगी।"

ब्राह्मणने कहा—"जब तक मेरेशरीरमें प्राण हैं तब तक तू किसी भी प्रकार नहीं जा सकती। मैं औरोंकी भाँति कहकर ही रुक जाने वाला नहीं। मैं करके दिखा दूँगा। तुझे बाँधकर डाल दूँगा।"

स्त्रीने गम्भीरता पूर्वक कहा—"स्वामिन्! मिलन तो आत्मासे होता है, आत्मा इन शरीर और रस्सियोंके बन्धनसे परे है। आप मेरे शरीरको बाँध सकते हैं। आत्माको तो आप बाँध ही नहीं सकते। उसीसे मैं जाकर मिल जाऊँगी।"

उसने क्रोधमें भरकर कहा—"अच्छी बात है, देखें तू कैसे

जाकर मिलती है।" यह कहकर उसने बलपूर्वक अपनी पत्नी-को पकड़कर एक रस्सीसे उसके हाथ पैर बाँधकर एक कुटीके खंभेमें रस्सी बाँध दी और बाहरसे ताला लगा दिया।"

शरीर बँध जानेपर उसकी आत्मा श्रीकृष्णमें ही लग गई। वह बार बार सोचने लगी-हाय ! मेरी सखी सहेलियाँ ही बड़ी भाग्यशालिनी हैं, जो नदनंदनके चरणोंका स्पर्श करेंगी। मैं अभागिनी उन तक न पहुँच सकी।' इस प्रकार उसके हृदयकी पश्चात्ताप रूपी अग्नि तीव्र हो उठी। उसने भगवान्‌का जैसा रूप सुना था, उसीको हृदयमें धारण करके ध्यानमें निमग्न हो गई यह शरीर तो प्रारब्ध कर्मानुसार प्राप्त होता है, श्रीकृष्णके ध्यान से समस्त संचित, प्रारब्ध और क्रियमाणकर्म उसके समाप्त हो गये। कर्मोंका बन्धन समाप्त होने पर यह शरीर टिक ही नहीं सकता क्यों कि शरीरतो कर्मोंका परिणाम है। तुरन्त उसके प्राण शरीरको छोड़कर सबसे पहिले जाकर श्रीकृष्णसे मिल गये। उसका पांचभौतिक मृतक शरीर यहाँ पड़ा रह गया। श्रीकृष्णको और उनके प्यारे सखाओंको अपने हाथके भोजन करानेकी कामना उसकी रह गई। उसे भगवान्‌ने उसके प्रति-बिम्बसे कभी अवश्य ही पूरा किया होगा। उसका बिम्ब श्याम सुन्दरके नित्य परिकरमें मिल गया। वह उनकी किंकरी बन गई। सबसे पहिले वही अपनी सूक्ष्म आत्मासे श्यामसुन्दरसे मिली। तदनंतर अन्य द्विजपत्नियाँ भोजन लेकर पहुँचीं।

श्रीकृष्णने भोजन लेकर सब द्विज पत्नियोंको पुनः यज्ञ-शाला में लौटा दिया और आपने कहा—"आओ ! मारो ओ ! अब उड़ाओ माल ! तबसे तुम भूख भूख चिल्ला रहे थे।"

ग्वालोंने कहा—"कनुआ भैया ! सची कहते हैं, हम तेरे डरके कारण अब तक नहीं बोले थे, नहीं तो तू इन पंडितानियोंसे

र्ति कर रहा था—हमारा हृदय धुकुरु धुकुरु कर रहा था भगवान्! कब ये यहाँसे टलें और कब हम भर पेट भात खावें लडुओंको मटकें हलुएको गटकें और रबड़ी पीपीकर खीड़ोंको पटकें।"

भगवान् बोले—"मैं क्या! इस बातको जानता नहीं था? तुम्हारे मनकी बात जान गया, इसीलिये उनको तुरंत विदाकर दिया। अब देरी करनेका काम नहीं है। आ जाओ और गोल पंक्ति लगाकर बैठ जाओ।"

गोप तो इसके लिये लालायित ही बैठे थे तुरंत बैठ गये। भगवान् परसने लगे, पूरा परसने भी नहीं पाये कि गोप बोले —"भैया, अब हमसे तो रहा नहीं जाता, तू परसते रहना। जिसपर जो आजाय वही उड़ाओ. सब खाने लगे। भगवान बड़े प्रेमसे उदारता पूर्वक परसने वाले बन गये, उन्हें कमी किस बातकी रह सकती है। इस प्रकार सभीने अत्यंत स्वादिष्ट सभी भक्ष्य, भोज्य, लेह्य और चोष्य इन चार प्रकारके पदार्थोको पेट भरके पाया। जब उनका पेट कंठ तक भर गया। उठनेकी सामर्थ्य न रही तो उन्होंने कहा—"कनुआ भैया! अब पेट भर गया। पत्तल पीछे फेंकेंगे हम तो यहो लेटते हैं।" यह कह-कर सब गोप वहीं लेट गये।

भगवान् हँस पडे और बोले—"अरे, मारे ओ! अन्न परा-या था, तो पेट भी पराया था क्या? इतना क्यों खाये।" यह कहकर जो कुछ बचा कुचा अन्न था, उसे भगवान्ने स्वय पाया। भक्त तो पहिले भगवान्को पवाकर तब प्रसाद पाते हैं और भगवान् पहिले भक्तोंको पवाकर उनके शेष बचे प्रसादीको पाते हैं। भक्त और भगवानकी ऐसी लीलायें अनादि कालसे होती आई हैं और अनंत काल तक होती रहेंगीं।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार आनंद कंद ब्रज

जीवन धन श्रीश्यामसुंदर मायासे मानव रूप धारण करके वृन्दावनमें मनुष्यों जैसे खेल करते रहते थे। देखनेमें तो वे मनुष्योंकेसे बालक दिखाई देते थे किन्तु उनके चरित्र सभी अद्भुत और अलौकिक थे। उनके रूपमें इतना अधिक आकर्षण था कि चर अचर सभी उसे देखकर विमुग्ध-बन जाते, उनकी वाणी इतनी मधुर थी, कि जो एक बार सुनलेता वह उनका क्रीत दास बन जाता, सदाके लिये उनके हाथों बिक जाता उनके कर्म इतने सरस और अनुपम थे, कि उन्हें देखते देखते नेत्र तृप्त नहीं होते थे, सुनते सुनते कान नहीं अघाते थे। व्रजमें रहकर वे निरन्तर गोप गोपी तथा गौओंको आनन्दित करते रहते थे। उन्होने अपनी लीलासे द्विजपत्नियोंको भी कृतार्थ किया। उन्हें अपने दर्शनभी दिये और उनके सम्बन्धियोंसे भी विग्रह न होने दी।"

शौनकजीने पूछा—"हाँ, तो सूतजी! उन स्त्रियोंके पति तथा अन्यान्य सम्बन्धी क्रुद्ध क्यों नहीं हुए। उन सबने तो उनकी आज्ञाका उल्लङ्घन किया था।"

सूतजी बोले—"महाराज! जिसपर श्यामसुन्दरकी कृपा हो जाती है, उसपर सभी कृपा करते हैं। जिसके अनुकूल नंदनंदन हैं, उसके प्रतिकूल कोई हो ही कैसे सकता है। इन स्त्रियोंके जानेमें वे इनपर प्रसन्न ही नहीं हुए अपितु वे सबके सब भी भक्त बन गये। उन्हें अपने कृत्य पर दुःख हुआ। उन्हें अपनी भक्ति हीनतापर बड़ा पश्चात्ताप हुआ।"

शौनकजी बोले—"सूतजी! पापकी पश्चात्तापसे बढ़कर दूसरी कोई औषधि नहीं। यदि अपने कुकृत्यपर हृदयसे सच्चा पश्चात्ताप हो जाय, तब तो सब बेड़ा पार ही हो जाय। उन याज्ञिकविप्रोंको कैसे पश्चात्ताप हुआ और पश्चात्तापमें उनके हृदयसे कैसे उद्गार निकले, कृपा करके इस प्रसङ्गको हमें और

ाइये।"

सूतजी बोले—"अच्छी बात है, महाराज ! अबमैं उन ज्ञिक विप्रोंकी पश्चात्तापकी ही कथा सुनाता हूँ, आप इस प्रस- ो समाहित चित्तसे श्रवण करें।"

छप्पय

एक जाइ नहिँ सकी रोकि निज पतिने लीन्ही।
करि तैयारी चली बाँधि रस्सीतैं दीन्ही॥
दरशनमहँ व्यवधान पर्‌यो अतिशय घबराई।
श्यामरूप हिय धारि त्यागि तनु स्वर्ग सिधाई॥
मन मनमोहनके निकट, तन यज्ञशालामहँ पर्‌यो।
प्रेम प्रबलताने यहाँ, अति अद्‌भुत कौतुक कर्‌यो॥

—·※·—

याज्ञिक विप्रोंका पश्चात्ताप

(१४५)

अथानुस्मृत्य विप्रास्ते अन्वतप्यन्कृतागसः ।
यद्विश्वेश्वरयोर्याच्ञामहन्म नृविडम्बयोः ॥
दृष्ट्वा स्त्रीणां भगवति कृष्णे भक्तिमलौकिकीम् ।
आत्मानं च तया हीनमनुतप्ता व्यगर्हयन् ॥
(श्रीभा० १० स्क० २३ अ० ३७, ३८ श्लो०)

छप्पय

इत सब आईं लौटि द्विजनि अति प्रेमदिखायो ।
यज्ञकाज लै संग पूर्ण विधि सहित करायो ॥
विप्रनिको हू हृदय शुद्ध हरिने करि दीन्हों ।
सबने पश्चाताप कृत्य अपनेपै कीन्हों ॥
ये अबला ई धन्य हैं, हाय ! अभागे हम रहे ।
आये प्रभु पूजे नहीँ, कठिन वचन उलटे कहे ॥

अपराध करना-भूल करना-यह जीवका स्वभाव है। जो अपने बनावटी स्वभावसे ऊपरके चाकचिक्यसे अपनेको दूधका

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन ! इधर जब उन यज्ञ करने वाले विप्रोंने यह अनुभव किया कि हमने मनुष्यरूपधारी दोनों जगदीश्वरोंकी याचनाका अनादर करके बड़ा अपराध किया है, तो उन्हें बड़ा

घुला मिद्ध करते हैं। जो अपने पापोंको छिपानेको झूठ बोलकर पापके ऊपर पाप करते हैं। अपनी भूलको भी घुमा फिराकर सत्य सिद्ध करनेका प्रयत्न करते हैं, उनका उद्धार होना अत्यंत कठिन है। सुधारका श्रीगणेश पापकी स्वीकृतिमें है। संसारमें पाप किससे नहीं होता। जो पाप पुण्यसे रहित प्रभु हैं, उनकी बात तो छोड़ दो, वे तो कुछ करते ही नहीं। किन्तु जिसने कर्मानुसार शरीर धारण किया है, उससे पाप भी होंगे, पाप करके जो उन्हें अनेक प्रकारके दम्भ करके छिपाते हैं, मानों वे पापोंको कृपणके धनकी भाँति एकत्रित करते जाते हैं। आगे सप होकर वे पापोंकी रक्षा करेंगे और नरककी यातनायें सहेंगे। भलसे या प्रमादसे पाप हो गया और करनेके अनंतर उसके लिये हृदयसे पश्चात्ताप हो, तो यह आशाकी जाती है, कि पश्चात्तापकी अग्निसे पापोंके पुंज अवश्य ही भस्म हो जायँगे।

पश्चात्तापसे भीतरका जितना कूड़ा करकट होता है वह सब जलकर भस्म हो जाता है, हृदय विशुद्ध बन जाता है। इसलिये पाप हो जाना यह कोई उतनी बुरी बात नहीं है सबसे बुरी-बात तो यह है कि पापको छिपाये रखना और ऊपरसे ऐसी चेष्टा करना मानों हमने तो कुछ किया ही नहीं। समझो कि इनकी पापमें आसक्ति हो गई है। अतः हृदयमें पश्चात्ताप होना यह भगवान्की बड़ी कृपा है। यह बिना भक्तोंके संपर्कके-बिना सत्संगके-नहीं होता।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! वे विप्रपत्नियाँ लौटकर यज्ञशाला में आगईं। पतियोंके सहित समस्त कार्य किये। वे तो भगवद्

पश्चात्ताप हुआ। अपनी स्त्रियोंमें भगवान्की अलौकिकी भक्ति देखकर तथा अपनेको उससे हीन समझकर वे पछताते हुए अपने आपही अपनी निंदा करने लगे।"

दर्शन करके कृतार्थ हो चुकी थीं। कृतार्थ हुए पुरुषसे जो रसता है, वह भी कृतार्थ हो जाता है। उनके सम्पर्कसे ब्राह्मणों को भी ज्ञान होगया। अब उन्हें अपनी भूल मालूम हुई। वे सोचने लगे—"हाय! हमने यह कैसा पाप किया। दोनों राम कृष्ण तो साक्षात् जगदीश्वर हैं। मनुष्य रूप रखकर पृथिवीपर लीला कर रहे हैं। हाय! हमने उनके माँगनेपर एक मुठ्ठी अन्न भी नहीं दिया। उनकी आज्ञाकी अवहेलनाकर दी। उनकी याचनाका अनादर किया। देखो, हमारी ये स्त्रियाँ ही धन्य हैं। पूर्वजन्ममें इन्होंने ऐसे कौनसे पुण्य कर्म किये हैं, जिसके द्वारा इनकी भगवान्में ऐसी अलौकिक भक्ति उत्पन्न हो गई। हम तो वैसे ही मूढ़ रहे। ये हमारी स्त्रियाँ जगद्पूज्य बन गई'।

इस पर शौनकजीने पूछा—"सूतजी! ये याज्ञिक द्विजोंकी पत्नियाँ पूर्वजन्ममें कौन थीं इनकी भगवान्में ऐसी स्वाभाविकी प्रीति कैसे हुई?"

शौनकजी बोले—'महाराज! सत्संगमें प्रेम, साधुसन्तोंके चरणोंमें अनुराग, शुभकर्मोंमें प्रवृत्ति, तथा भगवान्में भक्ति होना कोटिजन्मोंतक पुण्य क्रियायें करनेके अनन्तर शुद्ध अन्तःकरण वाले लोगोंके हृदयमें ही ये सब होती हैं। कोई ऐसा अन्तराय आ जाता है, कि पुनर्जन्म लेना पड़ता है, उसमें कुछ पाप कर्म भी बन जाते हैं। इससे और अधिक पश्चात्ताप होता है, भगवान्में भक्ति अधिक बढ़ती है। ये विप्र पत्नियाँ पूर्व जन्ममें बड़ी तपस्विनी थीं। सप्तर्षियोंकी पत्नियाँ थीं, एक अपराधसे इन्हें जन्म लेना पड़ा।"

शौनकजीने पूछा—"सूतजी! वह कौन-सा अपराध बन गया। उसे भी हमें सुनाइये।"

सूतजी बोले—'भगवन्! एक बार समस्त सप्तर्षि मिलकर

रु यज्ञकर रहे थे, उसके समीप ही उनकी गुणवती सुशीला.
र्ममें परायण पत्नियाँ वस्त्रालंकारोंसे अलङ्कृत हुई बैठीं थी। वे
बकी सब सुंदरी थी, तपाये हुये सुवर्णके समान
उनके शरीरका वर्ण था। अत्यंत सुंदर रेशमी वस्त्र वे पहिने थीं
उनके मुखकी कान्ति सैकड़ों शारदीय चन्द्रोंको तिरस्कृत करने
वाली था। वे सुवर्णके आभूषणोंके पहिने प्रसन्नचित्तसे अपने
अपने पतियोंके निकट बैठी थीं। उनके ऐसे दिव्य रूपको देखकर
अग्निदेव उनपर मोहित हो गये। वे बार बार अपनी शिखाओंसे
उनके अङ्गोंको स्पर्श करने लगे। उस देवके स्पर्शसे उन स्त्रियोंके
चित्तमें चंचलता होनी स्वाभाविक थी। उनका मुख भी लाल
पड़ गया, आँखे चमकने लगी, अंगोंमें कंप होने लगी, और
अंग भी शिथिलसे होने लगे, किन्तु वे समझ न सकीं हमारी
ऐसी दशा क्यों हो रही है।

उस यज्ञमें अङ्गिरा मुनि भी सप्तर्षियोंमेंसे थे। क्यों कि स-
प्तर्षि तो प्रत्येक कल्पमें बदलते रहते हैं। अङ्गिरा मुनि अग्निके
भावको ताड़ गये। उसके काम भावको समझ गये उन्होंने शाप
दिया—"अग्निदेव! इतने भारी देवता होकर तुमने यज्ञके समय
ऐसी कुचेष्टाकी है, तुम सर्वभक्षी हो जाओ।"

अग्निको शाप देकर वे पत्नियोंको देखकर बोले—"यज्ञके
समय तुम्हारी ऐसी काम युक्त चेष्टा हो गई अतः जाओ तुम
पृथिवीपर मानुषी योनिमें उत्पन्न हो और हमारे वंश वाले याज्ञि-
क ब्राह्मण तुम्हें ग्रहण करेंगे। उनकी तुम पत्नी बन जाओगे।"

मुनिको क्रुद्ध होते देखकर उन मुनि पत्नियोंने भूमिमें सिर
टेककर उन्हें प्रणाम किया और रोते रोते बोलीं—"मुनिवर!
इसमें हमारा तो कोई अपराध नहीं था। हम तो जानते भी
नहीं थे, अग्निदेवका हमारे प्रति ऐसा भाव है, फिर आपने यह

दर्शन करके कृतार्थ होचुकी थीं। कृतार्थ हुए पुरुषसे जो सम्बन्ध रखता है, वह भी कृतार्थ हो जाता है। उनके सम्पर्कसे ब्राह्मणोंको भी ज्ञान होगया। अब उन्हें अपनी भूल मालूम हुई। वे सोचने लगे—"हाय! हमने यह कैसा पाप किया। दोनों राम कृष्ण ना साक्षात् जगदीश्वर हैं। मनुष्य रूप रखकर पृथिवीपर लीलाकर रहे हैं। हाय! हमने उनके मँगवानेपर एक मुट्ठी अन्न भी नहीं दिया। उनकी आज्ञाकी अवहेलनाकर दी। उनकी याचनाका अनादर किया। देखो, हमारी ये स्त्रियाँ ही धन्य हैं। पूर्वजन्ममें इन्होंने ऐसे कौनसे पुण्य कर्म किये हैं, जिसके द्वारा इनकी भगवान्में ऐसी अलौकिक भक्ति उत्पन्न हो गई। हम तो वैसे ही मूढ़ रहे। ये हमारी स्त्रियाँ जगद्पूज्य बन गईं।

इस पर शौनकजीने पूछा—"सूतजी! ये याज्ञिक द्विजोंकी पत्नियाँ पूर्वजन्ममें कौन थीं इनकी भगवान्से ऐसी स्वाभाविकी प्रीति कैसे हुई?"

शौनकजी बोले—"महाराज! सत्सगमें प्रेम, साधुसन्तोंके चरणोंमें अनुराग, शुभकर्मोंमें प्रवृत्ति, तथा भगवान्में भक्ति होना कोटिजन्मोतक पुण्य क्रियायें करनेके अनन्तर शुद्ध अन्तःकरण वाले लोगोंके हृदयमें ही ये सब होती हैं। कोई ऐसा अन्तराय आ जाता है, कि पुनर्जन्म लेना पड़ता है, उसमें कुछ पाप कर्म भी बन जाते हैं। इससे और अधिक पश्चात्ताप होता है, भगवान्में भक्ति अधिक बढ़ती है। ये विप्र पत्नियाँ पूर्व जन्ममें बड़ी तपस्विनी थीं। सप्तर्षियोंकी पत्नियाँ थीं, एक अपराधसे इन्हें जन्म लेना पड़ा।"

शौनकजीने पूछा—"सूतजी! वह कौन-सा अपराध बन गया। उसे भी हमें सुनाइये।"

सूतजी बोले—"भगवन्! एक बार समस्त सप्तर्षि मिलकर

क यज्ञकर रहे थे, उनके समीप ही उनकी गुणवती ,सुशीला, में परायण पत्नियां वस्त्रालंकारोंसे अलकृत हुई बैठीं थी। वे र्ग्की सब सुंदरी थी, तपाये हुये सुवर्णके समान नके शरीरका वर्ण था। अत्यंत सुंदर रेशमी वस्त्र वे पहिने थीं नके मुखकी कान्ति सैकड़ों शारदीय चन्द्रोंको तिरस्कृत करने ाली था। वे सुवर्णके आभूषणोंके पहिने प्रसन्नचित्तसे अपने प्रपने पतियोंके निकट बैठीं थीं। उनके ऐसे दिव्य रूपको देखकर ग्निदेव उनपर मोहित हो गये। वे बार बार अपनी शिखाओंसे नके अङ्गोंको स्पर्श करने लगे। उस देवके स्पर्शसे उन स्त्रियोंके चत्तमें चंचलता होनी स्वाभाविक थी। उनका मुख भी लाल हो गया, आँखे चमकने लगीं, अंगोंमें कंप होने लगी, और ग भी शिथिलसे होने लगे, किन्तु वे समझ न सकी *हमारी सी दशा क्यों हो रही है।*

उस कल्पमें अङ्गिरा मुनि भी सप्तर्षियोंमेंसे थे। क्यों कि स-र्षि तो प्रत्येक कल्पमें बदलते रहते हैं। अङ्गिरा मुनि अग्निके ावको ताड गये। उसके काम भावको समझ गये उन्होंने शाप या—"अग्निदेव! इतने भारी देवता होकर तुमने यज्ञके समय सी कुचेष्टाकी है, तुम सर्वभक्षी हो जाओ।"

अग्निको शाप देकर वे पत्नियोंको देखकर बोले—"यज्ञके मय तुम्हारी ऐसी काम युक चेष्टा हो गई अतः जाओ तुम थिवीपर मानुषी योनिमें उत्पन्न हो और हमारे वंश वाले याज्ञि- ब्राह्मण तुम्हें ग्रहण करेंगे। उनको तुम पत्नी बन जाओगे।"

मुनिको क्रुद्ध होते देखकर उन मुनि पत्नियोंने भूमिमें सिर टेकर उन्हें प्रणाम किया और रोते रोते बोलीं—"मुनिवर! समें हमारा तो कोई अपराध नहीं था। हम तो जानते भी हीं थे, अग्निदेवका हमारे प्रति ऐसा भाव है, फिर आपने यह

दारुण शाप हमें क्यों दिया ? स्त्रियोंके लिये प्राणपतिसे वियोग होना मृत्युसे भी बढ़कर है। स्त्रियाँ दूसरेके भयसे स्वामीकी शरणमें जाती हैं यदि उनका स्वामी ही क्रुद्ध हो जाय, तो किस.. शरण जायँ ? इसलिये आप हमपर कृपा करें।"

यह सुनकर महामुनि अङ्गिरा बोले—'देखो, स्त्रियाँ जब अत्यन्त काम पीड़िता हो जाती हैं, तो उनके अङ्ग अशुद्ध हो जाते हैं, वे देव पितृ कार्यकी अधिकारिणी नहीं रह जाती इसलिये तुम हमारे साथ अब यज्ञ करनेकी अधिकारिणी रही नहीं"

मुनि पत्नियोंने कहा—'हमने जान बूझके तो ऐसा किया नहीं है। जो स्त्री जान बूझकर पर पुरुषसे संपर्क करती है, वह नरक गामिनी होती है। हमारे बिना जाने अग्निने ऐसी कुचेष्टा करदी। भगवन्! महामुनि गौतमकी पत्नीके साथ इन्द्रने छल किया था। उसे भी पुनः अपने पतिकी प्राप्ति हो गई। आपका वचन असत्य तो होगा नहीं, आपकी प्राप्ति हमें कब होगी ?

यह सुनकर और सबका पतिमें प्रेम देखकर मुनिको भी दया आ गई और वे भी रोने लगे। उन्होंने कहा—"देवियो ! संसारमें न कोई किसीपर अनुग्रहकर सकता है, न शाप दे सकता है। ये सब तो पूर्व जन्मोंके संस्कारोंके अनुसार प्रारब्धके वश होता है, ऐसा प्रतीत होता है, हमारा तुम्हारा इतने ही दिनका संस्कार था। संस्कार समाप्त होने पर कोई किसीके साथ रह ही नहीं सकता। किया हुआ कर्म बिना भोगे समाप्त होता ही नहीं। कर्मोंके भोग तो भोगने ही होंगे। अब तुम्हारे साथ सम्बन्ध रखना हमारा धर्म नहीं है।

दीनताके स्वरमें मुनि पत्नियोंने कहा—"भगवान् ! हमने तो कोई पाप किया नहीं।"

मुनिने कहा—"तुमने न किया हो, तुम्हारे प्रारब्धसे हो गया हो। दूसरोंके द्वारा भुक्त स्त्रीको जो पति अपने पास रखता है, वह नरक गामी होता है। ऐसी स्त्रीके हाथके हव्यको देवता ग्रहण नहीं करते, कव्यको पितर ग्रहण नहीं करते। इसीलिये शास्त्रकार भोजन बनानेकी हंडीकी और यज्ञमें साथ बैठने वाली धर्मपत्नीकी बड़े यत्नसे रक्षा करते हैं। ये दोनों वस्तुएँ दूसरेके द्वारा छूई जानेपर अशुद्ध हो जाती हैं। अपने द्वारा छूनेपर विशुद्ध बनी रहती हैं। अतः अब तुम्हें पृथिवीपर जन्म लेना ही होगा।"

इसपर उदास होकर मुनि पत्नियोंने कहा—"तब प्रभो! हमारे उद्धारका उपाय बताइये।"

इसपर आङ्गिरा मुनि बोले—"तुम्हारा जाकर व्रजमंडलमे जन्म होगा तुम याज्ञिक विप्रोंको पत्नी बनोगी। वहाँ श्रीकृष्णके दर्शन मात्रसे ही तुम गो लोककी अधिकारिणी बन जाओगी।"

मुनि पत्नियाँ बोली—"भगवान्! आप तो कहते हैं वासनाओं का अंत भोगसे होता है। हमारे मनमें अभी आपको पानेकी कामना बनी हुई है वह कैसे पूरी होगी।

मुनि बोले—"तुम अपने विम्ब रूपसे तो गो लोककी अधिकारिणी बनजाओगी, किन्तु भगवान् तुम्हारी एक छाया बनाकर ब्राह्मणोंके पास भेज देंगे, उसीसे तुम उनकी पत्नि बनी रहोगी और उसीके अंशसे आकर फिर हमारी पत्नी बनोगी।"

यह सुनकर वे दुखी हुईं, वे ही आकर ये यज्ञ पत्नियाँ हुईं।"

इसपर शौनकजीने पूछा—"सूतजी! उन मुनि पत्नियोंका कोई दोष तो था नहीं, फिर भी मुनिने उन्हें शाप क्यों दिया?"

इसपर शीघ्रताके साथ सूतजी बोले—"महाराज! यह शाप

कहाँ था, यह तो अनुग्रह थी। नहीं यज्ञका धूआ सूँघत सूँघते ही मर जातीं। भगवानकी प्राप्ति न होती। यहाँ तो भगवानके दर्शन मात्रसे ही वे गोलोककी अधिकारिणी हुईं। भगवान जो करते हैं सब मगलहो करते हैं यही सोचकर शक्तिभर विषयोंके प्रलोभनसे बचकर निरंतर कथा कीर्तनमें ही अपने समयको व्यतीत करे। जो अपनेको श्रीकृष्णके लिये समर्पित कर देगा, भगवान् उस पर कभी न कभी अवश्य ही कृपा करेंगे। भक्तोंका संग कभी निष्फल नहीं जाता। उसका कभी न कभी सुपरिणाम अवश्य होता है। देखिये, ये विप्र पत्नियाँ कितने दिनोंसे इन ब्राह्मणोंके साथ थीं। इनके साथ रहते रहते इनके बाल बच्चे हुए इनके साथ कितने यज्ञ याग किये. फिरभी ये शुष्क कर्मठके कर्मठ बने रहे और ये निरन्तर श्रीकृष्णकी लीलाओंके चिन्तनमें उनके यथाश्रुतरूपके ध्यानमें ही निमग्न रत रहीं। अतमें इन्हें भगवान्के दर्शन हुए। भगवद् दर्शन पाकर जबये कृतार्थ हो गईं, तो इनके समर्गमें इनके पतियोंको भी अपने पूर्वके अपराधोंके लिये पश्चात्ताप हुआ।"

शौनकजीने पूछा—"हाँ सूतजी, क्या पश्चात्ताप हुआ। यही सुनाइये यह कथा तो बीचमें प्रसंग वश आगई।"

सूतजी बोले—"महाराज! वे याज्ञिक-ब्राह्मण यज्ञ समाप्त करनेके अनंतर परस्परमें बैठकर सोचने लगे—"हाय! हम अपनेको सब वर्णों मे श्रेष्ठ समझते थे। हमारी धारणा थी हम द्विजन्मा ही नहीं त्रिजन्मा हैं। माताके गर्भमे जन्म था और गायत्री उपदेशको ग्रहण करना ये दो जन्म तो द्विजोंके प्रसिद्ध ही हैं। यज्ञ करने वाले ब्राह्मणोंका एक दैव जन्म तीसरा होता है जिसमें बडे बडे यज्ञोंकी दीक्षाली जाती है। हमारे तीन जन्म होनेपर भी भगवद् भक्तिसे शून्य होनेके कारण ये सब व्यर्थ बनगये।

जो विद्या नन्दनन्दनके चरणारविन्दोंमें अनुराग उत्पन्न न करसके वह विद्या विद्या नहीं, अविद्या है। इसी लिये भक्ति शून्य होनेके कारण हमारी विद्या भी व्यर्थ बन गई। हमने जो इतने दिन ब्रह्मचर्य व्रतका पालन किया, वह भी भक्ति हीन होनेसे केवल दम्भ मात्र ही सिद्ध हुआ। हमने जो इतने कृच्छ्र चान्द्रायणादि व्रत किये, वे भी भक्तिके बिना केवल शरीर सुखानेके श्रम मात्रही सिद्ध हुए। हम समझते थे हम ज्ञानी हैं, किन्तु ज्ञानी न होकर ज्ञान मानीही निकले, अज्ञानीके सदृश हमारा आचरण हुआ"

इसपर एक वृद्धसे विप्र बोले—"भैया! इसमें हमारा अपराधभी क्या है। करने कराने वाले तो वे श्रीहरि ही हैं। जब वे जिससे जो कराना चाहते हैं, उसे वह कार्य विवश होकर करना पड़ता है, किसीका वश नहीं चलता। अच्छे अच्छे ज्ञानी चौकड़ी भूल जाते हैं। चिरकाल तक, जप, अनुष्ठान, मौन, ब्रह्मचर्य साधन भजन करने पर भी लोग फिसल जाते हैं, उनके भाव दूषित हो जाते हैं। यह भगवान्‌की गुणमयी दैवी माया इतनी प्रबल है, कि बड़े बड़े योगियोंके मनको भी मथन कर डालती है। नहीं तो देखो हमारा जन्म विशुद्ध ब्राह्मण कुलमें हुआ है, सदासे सदाचारका पालन करते आये हैं। यथा शक्ति वेदपाठ, जप, यज्ञ, परोपकार भी करते हैं। सब वर्णोंके गुरु हैं, सभी हमारा विद्वान् समझकर आदर करते हैं। फिरभी हम भगवानकी मायामें मोहित होगये। अपने अभिमानके वशीभूत होकर अपने परम स्वार्थको भूल गये।" भगवान हमारे समीप आये फिर भी उनमें हमारा अनुराग ही नहीं हुआ।"

इसपर एक अन्य ब्राह्मण बोला—"भैया! हम लोग तो अभिमानमें ही मर गये। दस आदमियोंने पंडितजी पंडितजी

कहा, पैर छूए फूलकर कुप्पा हो गये। समझने लगे हम सबसे बड़े हैं। जिन स्त्रियोंको हम अपने अधीन समझते थे, हमसे तो ये लाखगुनी अच्छी हैं। इनका यज्ञोपवीत संस्कार नहीं हुआ। इन्हों ने गुरुकुलमें वासकरके हवन, वेदाध्ययन, तथा गुरु शुश्रूषा आदि शुभ कर्म भी नहीं किये। इन्होंने कृच्छ्र चान्द्रायणादि तप भी नहीं किये, शरीरको भी नहीं सुखाया। इन्होंने आत्मतत्त्वकी खोज के लिये शास्त्रोंका ऊहा पोहभी नहीं किया। इनमें कोई बड़ी भारी पवित्रता होती हो सो भी बात नहीं। स्त्रीके लिये शास्त्रोंमें भी पुरुषोंकी अपेक्षा शौचके आधे नियम बताए हैं। इनका भी ये पालन नहीं करते, इनके अगोंकी बनावट ही ऐसी है, कि शौचके नियम पालन ही नहीं हो सकते, अपवित्र जलादिसे इनके अग भीगे ही रहते हैं। पतियोंके साथमें जो शुभ कर्म करलें उन्हींमें इनका भाग होता है, नहीं तो इनकी प्रवृत्ति सांसारिक कार्योंमें ही अधिक होती है इतना सब होने पर भी इनका जगद् गुरु परात्पर प्रभु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंमें इतना अनुपम अनुराग हो गया ये ही धन्य हैं, हम इस मान प्रतिष्ठा और स्वर्गके लोभमें ही फँस गये। जीवका चरम लक्ष्यमें भगवत् प्राप्ति जो इससे वञ्चित रह गया वह मानो जान बूझकर मृत्युके मुखमें घुस गया। जिसने नंद-नंदनके चरणारविन्दोंमें चित्तको लगा दिया वह मृत्युके पाशरूप गार्हस्थ्य सम्बन्धको तोड़कर संसार बन्धनसे विमुक्त बन गया। यह अत्यंत दुःख, आश्चर्य खेद और लज्जाकी बात है इन संस्कार हीन हमारी स्त्रियोंकी योगेश्वरोंके भी ईश्वर पुण्य श्लोक भगवान् वासुदेवमें ऐसी सुदृढ़ भक्ति है और हम संस्कारादिसे युक्त होने पर भी कोरेके कोरे ही रह गये। हमारा हृदय प्रभु प्रेमसे शून्य ही बना रहा। हम भगवद् भक्तिसे वञ्चित ही रहे। देखो, हमसे भगवानने भूखके कारण मुट्ठी भर अन्न माँगा, वह भी हमने लोभ

यश नहीं दिया।"

इसपर एक अत्यंत भावुक विप्र रोते रोते बोला—"अरे, भैया! भगवान्ने याचना नहीं की। उन आप्तकाम प्रभुको भला याचनाकी क्या आवश्यकता पड़ी थी। जो विश्वको खानेको देता है, उसे भूख क्या कष्ट दे सकती है। यह तो भगवान्ने हमारे ऊपर कृपाकी। हमें सचेत करनेको यह लीला रची। हम लोग अपने यथार्थ स्वार्थको भूलकर इन नाशवान सातिशय आदि दोषोंसे युक्त स्वर्गीय सुखोंको ही सब कुछ समझकर उनके लिये सतत प्रयत्न करते रहते थे। गृहस्थके सुखोंमें उन्मत्त होकर वे सब हमें स्वर्गमें भी प्राप्त हों इसके लिए चिन्तित होकर यज्ञ दान आदि कर रहे थे। सज्जनोंके एक मात्र गति नन्दनन्दनने गोप को भेजकर हमारी मोहनिद्रा भगकी। हमें गृहस्थ सुखसे आगे भी कोई वस्तु है, यह मानेका अवसर दिया। नहीं तो जो स्वयं पूर्ण काम हैं, जो स्वयं ही चराचर जीवोंकी इच्छित कैवल्या दि कामनाओंको भी देने वाले हैं। जो वाञ्छा कल्पतरु कहाते हैं उन ईश्वरोंके ईश्वर वृन्दावन विहारीको हम भक्तोंसे क्या लेना था? इसी मिससे उन्होंने हमें सावधान करनेको ही यह सब कुछ किया।"

इसपर आश्चर्य चकित होकर एकवृद्ध ब्राह्मण जो यज्ञके आचार्य थे वेबोले—"हाँ, भैया! सत्य कहते हो, यही बात है। इस लक्ष्मीको अत्यंत चंचला कहा जाता है। जिसकी छायाकी तनिक सी कृपाके लिये ब्रह्मादि देव तरसते रहते हैं। वह मूर्ति-मती साक्षात् लक्ष्मी अपनी चंचलता तथा अहंता आदि अवगुणोंको त्यागकर निरंतर जिनके पैरोंको पलोटती रहती है उन पूर्ण काम प्रभुकी अन्नकी याचना हम लोगोंको मोहित करनेके ही लिये थे। हमारे मनको अपनी ओर खींचनेके ही

लिये यह लीला थी। हमने वेदोंमें यह बात सुनी भी थी कि नन्दनन्दन ही यज्ञ, देशकाल, समस्त द्रव्य, मन्त्र, तन्त्र, ऋत्विज अग्नि, देवता, यजमान तथा धर्म ये सब रूप हैं। वे चराचर विश्वके स्वामी हैं, वे धर्म संस्थापनार्थ अवनिपर अवतार धारण करते हैं। आजकल वे यदुकुलमें अवतीर्ण हो भी चुके हैं। यह सब जान बूझकर भी हम अनजान बन गये। भ्रम हो गया, कि जो एक मुट्ठी अन्नकी याचना करता है वह क्या अवतार होगा? हाय! हमारी कैसी कुबुद्धि होगई।"

यह सुनकर एक याज्ञिक बोला—"अरे, भाई! जो हुआ सो हुआ। हम सब भगवान्‌की मायामें भटक रहे हैं। उन्होंने ही हमारी बुद्धिको ऐसा बना दिया। इसी लिये हमपर ऐसा अपराध बन गया। फिर भी हम बड़े बड़भागी हैं, हम भक्त नहीं तो हमारी अर्धाङ्गिनी तो भगवान्‌की भक्ता हैं। हम उनके ही संसर्गसे पारहो जायँगे। देखो उन्हींके अनुग्रहका तो यह फल है कि हमारी बुद्धि भी उनकी भक्तिके प्रभावसे भगवान् नन्द नन्दनमें निश्चल हो गयी है।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार वे याज्ञिक सब हृदयसे अपने अपराधके प्रति पश्चात्ताप प्रकट करते हुए सब मिलकर बार बार भगवान्‌के पाद पद्मोंमें प्रणाम करने लगे, और अपने अपराधके लिये क्षमा याचना करते हुए सब मिलकर कहने लगे—"जिनकी मोहिनी मायासे मोहित होकर हम मन्द मति कर्म मार्गमें इधरसे उधर भटकरहे हैं ऐसे अकुण्ठ बुद्धि वाले भगवान् नन्द नन्दनके चरणारविन्दोंमें हमारी नमस्कार है। वे भगवान् अपनी मायासे मोहित हम अज्ञ नाम मात्रके द्विजा पर प्रसन्न हों, हम अज्ञनियके अपराधको क्षमा करें। हम उनके चरणोंमें प्रणाम करते हैं।" इस प्रकार सबने मिलकर भगवान्‌से

क्षमा-याचनाकी।

इसपर एकने कहा—"भैया, सबलोग चलकर भगवानके दर्शन करो, उनके समीप जाकर ही अपने अपराधकी क्षमा याचना करो।"

इसपर एक वृद्धसे ब्राह्मण बोले—"देखो, भाई ! भगवान् तो अन्तर्यामी हैं, वे घट घटकी जानते हैं। यह कंस बड़ा दुष्ट है, हम इसकी नगरीमें रहते हैं। यह दुष्ट भगवान्को मरवानेके लिये उद्योगकर रहा है। उन्हें तो क्या मरवा सकेगा स्वयं ही मारा जायगा किन्तु इस समय हमारा जाना उचित नहीं। लोग भाँति भाँतिकी शंका करेंगे। किसीने जाकर उस दुष्टसे कह दिया, तो एक नया झंझट होगा, स्त्रियोंकी बात दूसरी है। इस समय जाना उचित नहीं, फिर कभी भगवान् कृपा करेंगे तो दर्शन होंगे।

सूतजी कहते हैं—'मुनियो ! इस प्रकार भगवानके दर्शनोंकी इच्छा होनेपर भी वे कंसके भयसे वहाँ न जा सके। यज्ञ समाप्त करके वे मथुराको लौट गये। भगवान् भी ग्वाल बालोंको साथ लिये हुए सायंकाल समझकर वृन्दावनको चले गये। अब जैसे भगवान्ने इन्द्रके गर्वको हरण किया। उस लीलाका वर्णन मैं करूँगा।"

छप्पय

करुना सागर कृष्ण कबहुँ तो कृपा करेंगे।
मलिन वासना दुःख शोक आसक्ति हरेंगे॥
माया मोहित जीव करम मारग महँ भटकें।
क्षुद्र स्वर्ग सुख हेतु अनल महँ सिर नित पटकें॥
नदनंदन हम अधम अति, अधम उधारन नाथ तुम।
करहु छिमा अपराध प्रभु ! तव चरननि की शरन हम॥

——ॐ——

गोपोंका इन्द्रयागके लिये उद्यम

(९४६)

भगवानपि तत्रैव बलदेवेन संयुतः ।
अपश्यन्निवसन्गोपानिन्द्रयागकृतोद्यमान् ॥ *
(श्रीभा० १० स्क० २४ अ० १ श्लो०)

छप्पय

दै द्विजपत्निनि दरश दयानिधि ब्रज पुनि आये ।
बसि वृन्दावन नंदनंदन बहु चरित दिखाये ॥
एक दिवस हरि लखे गोप इततें उत जावें ।
जो तिन चावर घीउ, सबहि घर घरतें लावें ॥
बाबा ! का उत्सव करो, प्रभु पूछें ब्रजराजतें ।
धूम धाम अति मचि रही, होवैगो का आजतें ॥

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। समाजकी शोभा उत्सवसे है। मनुष्यकी उत्सवोंमें स्वाभाविक रुचि रहती है । एक-सी परिस्थितिमें या तो पशु रह सकते हैं, या अति उच्च कोटिके ज्ञानी महापुरुष। साधारण लोगोंको कुछ परिवर्तन चाहिये।

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! वृन्दावनमें जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बलदेवजीके साथ वास करते थे, तब उन्होंने एक दिन समस्त गोपोंको इन्द्रयागके लिये सामग्री जुटानेमें व्यस्त देखा ।"

कुछ उत्सव, धूम धाम, नाच गान चहल पहल चाहिये। उत्सवोंमें सभी सगे सम्बन्धी इष्ट मित्र तथा प्रेमी एकत्रित होते हैं। सबसे मिलना जुलना होजाता है। सब मिलकर देव-पूजन करते हैं। साथ साथ बैठकर प्रसाद पाते हैं घर द्वार सजाये जाते हैं, शुभ कार्योंके अनुष्ठान होते हैं। सुन्दर स्वादिष्ट विविध प्रकारके पदार्थ खानेको मिलते हैं। बड़ा विचित्र आनन्द होता है। सबके मनमें उत्साह होनेसे उसे उत्सव कहते हैं। भारतीय सदाचारमें नित्य उत्सव है। कोई ऐसा मास नहीं, कोई ऐसा पक्ष नहीं कोई ऐसा दिन नहीं जिसमें कोई न कोई पर्व या उत्सव न हो। आर्योंके यहाँ जन्मसे लेकर मृत्यु पर्यन्त उत्सव ही उत्सव हैं। इस प्राणीका जन्म आनन्दसे हुआ, आनन्दमें ही रहना चाहता है, इसीलिये पर्व और उत्सवोंको लोग बड़े उत्साहसे मनाते हैं, बड़ी बड़ी तैयारियाँ करते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी व्रजमें रहकर ग्वाल बालोंके साथ नित्य ही भाँति भाँतिकी क्रीडायें करके करके गोपियों तथा ग्वालोंको सुख देते थे। उनके सभी चरित्र अलौकिक होते थे। खेल तो सब प्राकृत बालकोंके ही सदृश करते थे, किन्तु उनमें कोई ऐसी विलक्षणता होती थी, कि सबका चित्त उस ओर खिंच जाता था।

एक दिन भगवान्ने देखा 'नन्दबाबा बड़े व्यग्र हो रहे हैं। सभी गोप चोपाल पर एकत्रित हैं। पुरानी पुरानी चहियाँ खोली जा रही हैं। पुरोहितजी कह रहे हैं, इतने चावलोंके बोरे लाओ चावल टूटे न हों, अक्षत हों। जौके इतने बोरे लाओ उनको पानीमें धोकर सुखलेना बीनलेना देखलेना घुन न हों। तिलके इतने बोरे चाहिये, वे सब काले हों नये हों, उनमें जीव-जन्तु न हों। सबको फटकलो, बीनलो, चुनलो धोलो। चीनी इतनी लाओ; शुद्ध गौका घी होना चाहिये।' मैदे आदिका उसमें

न मिला हो। अमुक वस्तु इतनी चाहिये। समिधा उस वृक्षकी चाहिये। अमुक वस्तुएं वहाँ मिलेंगी सब वस्तुओंको शीघ्र ही एकत्रित करो।" पुरोहितजीकी बात सुनकर गोप इधरसे उधर दौड़ रहे थे। कोई कुछ लाता, कोई कुछ उठाकर रखता। गोप गोपियोंमें एक प्रकारका खल बली मच रही थी, मानों समुद्रमें ज्वार भाटा आगया हो।

भगवान्‌ने देखा यह सब किस बातकी तैयारियाँ हो रही हैं। वे कुतूहल वश जाकर व्रजराजके समीप बैठ गये। और बोले— "बाबा! बाबा! आज क्या बात है ये सब तैयारियाँ किस बात की हो रही हैं, आज कौन-सा उत्सव है? उस उत्सवका क्या नाम है? उसमें क्या किया जाता है?"

नन्दजीने सोचा—'यह कनुआ बड़ा कुतर्की है। ऐसी ऐसी बातें पूछ बैठता है, कि उसका उत्तर मुझे भी नहीं सूझता। मुझे क्या बड़ेबड़े ऋषि मुनि चुप हो जाते हैं; अतः इसे टाल देना चाहिये। यही सोचकर वे बोले—"बेटा! यह बड़े बूढ़ोंका काम है, तुझे इन बातोंसे क्या। जा तू जाकर ग्वालबालोंके साथ खेल।"

यह सुन भगवान् अड़गये और बोले—"नहीं बाबा! मैं तो आज इस बातको जानकर ही जाऊँगा। तुम कहते हो, यह बड़े बूढ़ोंका काम है। अब तुम बूढ़े हो गये। भगवान् करे, कहीं तुम्हारी आँख मिच जाय तो फिर सब मुझे ही तो करना होगा। इसलिये अभीसे सब समझ बूझ लेना ठीक है।

नन्दजीने देखा यह मानेगा नहीं, अतः बोले—"बेटा! यह इन्द्रभगवान्‌की वार्षिकी पूजाका उत्सव है।"

उत्सुकताके साथ श्यामसुन्दर बोले—"इस उत्सवमें क्या होता है बाबा!"

प्यारसे नन्दजी बोले—"इसमें भैया यज्ञ होता है।

...सामग्री एकत्रित की जाती हैं। पिछले वर्ष भी तो हुआ था। तुझे याद तो रहती नहीं खेलमें मग्न रहता है। बड़ा भारी यज्ञ-मण्डप बनता है। उसे सजाया जाता है। उसमें तिल, चावल, जौ, दूध, दही, घृत, मट्ठा, नवनीत, गुड़, शहद और सब सामग्रियाँ लायी जाती हैं। मंडप सजाया जाता है। बड़ी धूम धामसे यज्ञ होता है।"

श्रीकृष्णने पूछा—'बाबा! इसे कराते कौन हैं?

नन्दजी बोले—"अरे, बेटा! बड़े बड़े ऋषि मुनि आते हैं। गर्ग, गालव शाकल्य शाकटायन, गौतम, कश्यप, कण्व वात्स्य, कात्यायन, सौभरि, वामदेव, याज्ञवल्क्य, पाणिनी, ऋष्यशृङ्ग, गौरमुख, भरद्वाज, वामन व्यास, शृङ्गी, सुमन्तु, जैमिनी कच, पराशर, मैत्रेय, तथा वैशम्पायन ये सभी ऋषि मुनि पधारते हैं, वे ही विधिवत् इन्द्रयाग कराते हैं।"

भगवानने पूछा—"बाबा! यह किस उद्देश्यसे किया जाता है?"

नन्दजीने झिड़ककर कहा—"अरे, उद्देश कुदेश पूछक क्या करेगा। यज्ञ होता है, बस इतना ही समझ ले।"

नम्रताके साथ भगवानने कहा—"देखिये, पिताजी! आप क्रुद्ध न हों, कोई बात छिपावें भी नहीं। देखिये संसारमें तीन ही प्रकारके लोग होते हैं। शत्रु, मित्र और उदासीन। जो अपने सुख दुःखमें सदा साथ रहते हैं अपना सदा भला चाहते हैं, वे तो मित्र कहाते हैं, जो अपनेसे द्वेष रखते हैं, अपना अनिष्ट चाहते हैं, वे शत्रु कहलाते हैं। जो न इष्ट चाहते हैं न अनिष्ट सामान्य रीतिसे रहते हैं वे उदासीन कहाते हैं। अपना ममतासे शून्य समदर्शी साधु पुरुष तो सबके साथ समान व्यवहार करते हैं, उनके लिये किसीके सम्मुख कोई बात छिपाने योग्य नहीं रहती। वे सबके सामने अपने मनोगत

भावोंको व्यक्त कर देते हैं।"

इसपर नन्दजी बोले—"देखो, बेटा! कुछ बातें ऐसी होती हैं, जो किसीसे कही जाती हैं, कुछ ऐसी होती हैं, जो छिपाई जाती हैं।"

इसपर भगवान्ने कहा—"देखिये पिताजी! जहाँ तक हो, अपने मनोगत भावोंको शत्रुसे सदा छुपता रहे। यदि कोई ऐसी बात हो, जिसका छिपाना आवश्यक ही हो, तो उसे शत्रुसे भी छिपावे उदासीनसे भी छिपावे। जो अपने अंतरङ्ग हैं, सुहृद हैं, पुत्रादि हैं वे तो अपने आत्माके ही सदृश हैं उनसे तो कोई बात छिपायी ही नहीं जाती।"

नन्दजीने कहा—"अरे, भैया! छिपाने और प्रकट करनेकी तो ऐसी कोई बात नहीं, किन्तु हम एक वंशपरम्परा गत उत्सव—इन्द्रयाग कर रहे हैं सदासे होता आया है, हम भी कर रहे हैं।"

भगवान्ने कहा—"सदासे होता आया है, इतना ही कहना पर्याप्त नहीं। मनुष्य जो भी कार्य करता है उसको कुछ न कुछ तत्व समझकर तब करता है कोई कोई ऐसे भी काम होते हैं, जिनके विषयमें कुछ समझते बूझते तो हैं नहीं, वैसे ही कर लेते हैं। पाप और पुण्य-कर्म चाहे समझकर किये जायँ, अथवा बिना समझे बूझे, फल तो दोनोंका ही कुछ न कुछ होगा, किन्तु समझकर किये हुए कर्मोंका जैसा फल होता है वैसा बिना समझे किये हुए कर्मोंका नहीं होता। इसलिये आप जो यह यज्ञोत्सव करनेवाले हैं, इसके फलके सम्बन्धमें कुछ जो जानते हो, उसे मुझे भी बतादें। यह जो आप यज्ञ कर रहे हैं, वह शास्त्र सम्मत है या लोक परम्परासे चला आया लौकिक कर्म है। इस विषयको जाननेके लिये मेरे मनमें बड़ा कुतूहल हो रहा है, आप इसके

सम्बन्धकी जितनी बातें हों, उन्हें मुझे स्पष्ट करके समझा दें। मैं आपका आज्ञाकारी पुत्र हूँ पुत्रको तो बिना पूछे ही ,उपदेश ना चाहिये, फिर जब वह श्रद्धासे पूछ रहा हो तब तो कहना ही क्या ?"

भगवान्की ऐसी नम्रता और प्रेममें सनी वाणी सुनकर न्दजी बोले—"अच्छा, मैं इस विषयको बताता हूँ । देख, टा ! इस यज्ञका नाम इन्द्र याग है । ये जो आकाशमें मेघ दिखायी देते हैं भगवान् इन्द्र इन सबके अधिष्ठातृदेव हैं । मेघ नकी आत्म मूर्ति ही हैं जलकी वर्षा इन्द्रही करते हैं; जिससे ाणियोंका जीवन चलता है । वर्षासे सभी प्राणी प्रसन्न होते , मेघोंके पति भगवान् इन्द्र जो जलकी वर्षा करते हैं उससे न्न आदि उत्पन्न होते हैं । उसी अन्नसे हम प्रति वर्ष जल रसानेवाले अमराधिप इन्द्रकी पूजा करते हैं । यज्ञसे जो शेष न्न बचता है, इससे हम धर्म, अर्थ और काम सम्बन्धी अपने समस्त व्यवहारोंको चलाते हैं । हम लोग तो केवल म ही कर सकते हैं, उस श्रमका फल तो मेघ पति इन्द्र ही ते हैं । इस यज्ञको हमारे पूर्वज भी करते आये हैं, हम भी रते हैं । इस परम्परागत धर्मको जो पुरुष किसीके भयमें लादिके लोभसे या देवताओंसे द्वेष करनेके कारण त्याग ते हैं, उनका कभी कल्याण नहीं होता । यही भैया हमने ो सुना है समझा है ।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! भगवान् तो सर्वज्ञ थे, वे ब कुछ जानते थे, उन्हें तो इन्द्रका अभिमान चूर करना ा, जैसे ब्रह्माजी भगवान्की महिमाको नहीं समझ सके थे, ैसे इन्द्र भी उनकी महिमाको नहीं समझे थे। उसे अभिमान ो गया था, कि मैं ही तीनों लोकोंका एक मात्र ईश्वर हूँ । अतः उसके इस अभिमानको चूर करने, उसे क्रोध दिलानेके

निमित्त भगवान् एक विचित्र ही तर्क उपस्थित करने लगे उन्होंने युक्तियों द्वारा जो तक दी है, इन्द्रका यज्ञ करनेमें अपनी असम्मति प्रकट की है, उसका वर्णन मैं आगे करूँगा।

छप्पय

तब बोले ब्रजराज इन्द्रकी पूजा भैया।
जो बरपावें नीर होहि तृन खावें गैया॥
जल ही जीवन कह्यो इन्द्र हैं जीवन दाता।
त्रिभुवन पति सर्वेश स्वर्गपति विष्णु विधाता॥
नन्द वचन सुठि सरल सुनि, हँसि बोले ब्रजराज चन्द्र तब।
जड चेतन चर अचर जग, पिता कर्म-वश भ्रमहिं सब॥

—::०::—

भगवान् द्वारा कर्मवादका उपदेश

(१४७)

देहानुच्चावचाञ्जन्तुः प्राप्योत्सृजति कर्मणा ।
शत्रुर्मित्रमुदासीनः कर्मैव गुरुरीश्वरः ॥
तस्मात्सम्पूजयेत्कर्म स्वभावस्थः स्वकर्मकृत् ।
अञ्जसा येन वर्तेत तदेवास्य हि दैवतम् ॥ *
(श्री भा० १० स्क० २४ अ० १७, १८ श्लो०)

छप्पय

जीव कर्मवश होहि कर्मवश ही मर जावै।
करै शुभाशुभ कर्म दुःख सुख तैसो पावै॥
बँधे कर्ममहँ जीव इन्द्र का करै बिचारा।
तैसो तब तनु मिलै कर्म जस होहि हमारा॥
कोउ न सुख दुख दै सकै, सबतैं कर्म विशिष्ट है।
जाको जातैं साधिक, चलै तासु सो इष्ट है॥

संसारमें जितने भी वाद हैं सब भगवानको ही लेकर हैं। कोई कहता है भगवान् हैं, कोई कहता है भगवान्

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! श्रीनन्दजीसे भगवान् कह रहे हैं—'पिताजी! यह जीव अपने कर्मोंके अनुसार ही उत्तम और अधम शरीरोंको ग्रहण करता है और छोड़ता है। वह कर्मोंके अनुसार ही शत्रु मित्र और उदासीन का व्यवहार करता है। इसलिये कर्म ही इसका गुरु है वही ईश्वर है। इसलिये मनुष्योंको कर्मकी ही पूजा करनी चाहिये और पूर्वसंस्कारोंके अनुसार अपने धर्मका पालन करते रहना

नहीं हैं। जो कहता है भगवान् हैं वह भी भगवान्के ही गुण गाता है जो कहता है भगवान् नहीं हैं, वह भी भगवान्के ही सम्बन्धमें चर्चा करता है। एक उन्हें अस्ति रूपसे मानता है दूसरा उन्हें नास्ति रूपसे मानता है। उनको सत्ता स्वीकार किये बिना अस्ति, नास्ति कुछ कहना बनता ही नहीं। जो कहते हैं 'अस्ति' उनमें भी बड़े वाद हैं। कोई कहता है वे शिवरूप हैं, कोई विष्णुरूप बताता है। कोई दुर्गा, सूर्य गणेश। कम ईश्वर, परमात्मा, ब्रह्म, द्वैत, अद्वैत, विशिष्टद्वैत और द्वैताद्वैत आदि आदि अनेक प्रकारसे उनकी मीमांसा करते हैं। इस प्रकार जितने वाद विवाद हैं उन्हींको लेकर हैं पक्षी आकाशके भीतर ही उड़ेगा। वह सोचे-'इस आकाशने तो हमें बंधनमें बाँध रखा है। अब हम इसे मानेंगे ही नहीं। पक्षी माने चाहें न माने उड़ना उसे आकाशमें ही होगा। आकाश छोड़ कर वह कहीं जा नहीं सकता। इसी प्रकार कुछ लोग कहते हैं— 'संसारमें जितने झंझट हैं ईश्वरको ही लेकर हैं, अतः ईश्वरका ही बहिष्कार करो। ईश्वरको ही मानना छोड़दो। भले ही छोड दो, किन्तु ईश्वरके बिना रह नहीं सकते। जो भी कल्पना करोगे, जो भी वाद खड़ा करोगे उनका आधार तो ईश्वर ही होगा। मीमांसक लोग कर्मको ही ईश्वर मानते हैं। जो जैसा कर्म करेगा वह वैसा फल पावेगा। कर्मके अतिरिक्त वे किसी अन्य ईश्वरको नहीं मानते, अतः उन्हें कोई कोई नास्तिक भी कहते हैं, किन्तु कहनेसे क्या हुआ नास्तिक भी हो तो उसका भी मूल आधार तो भगवान् ही हैं। भगवान्को ही लेकर तो उनका वाद आरम्भ होता है, भगवान्ने कुछ ऐसी मोहनी माया फैला रखी है कि सभी अपने अपने वादको सत्य मानते हैं। अद्वैतवादी कहते हैं

चाहिये। किसी जिसके द्वारा मुगमतासे आजिविका चलती है वही उसका इष्टदेव है।

भगवान एक अद्वैत हैं। भगवान् पुरुषसे उनके कानमें यह देते -"हाँ, मैं अद्वैतही हूँ।" दूसरा कहता है, नहीं भगवान् द्वैत हैं। आप यथाक्रम उनके भी कानमें भगवान् कह देते हैं-"तेरा ही कथन यथार्थ है मैं द्वैत ही हूँ।" ऐसेही आस्तिक नास्तिक द-देशमार्गी वाम मार्गी, शैव शाक्त, गाणपत्य, सौर तथा वैष्णव सभीको वे फँसाये हुए हैं।

सूतजी कहते हैं-"मुनियो! भोले भाले गोप इन्द्रको ही समस्त कर्मोंका फलदाता मानकर उसकी पूजा करते थे और इन्द्र को भी अभिमान हो गया था, कि मैं ही सबका स्वामी हूँ, अतः दोनोंके कल्याण के निमित्त भगवान् कर्मवादकी प्रशंसा करने लगे, वे सब गोपोंको सुनाते हुए नन्दजीको सम्बोधित करते हुए बोले—"पिताजी! आप कहते हैं इन्द्र जीवनदाता है, यह बात सत्य नहीं है जीव तो कर्मोंके अधीन है। सभी प्राणी अपने अपने कर्मों के अनुसार उत्पन्न होते हैं और कर्मानुसार ही मृत्युको प्राप्त होते हैं। सुख, दुख, भय, शोक, हानि, लाभ, यश, अपयश, क्षेम तथा मंगल प्राप्ति ये सभी सबको कर्मानुसार प्राप्त होते हैं।"

नंदजीने कहा—"अरे, भाई! कर्म तो जड़ हैं वे भला स्वतः सुख दुख क्या दे सकते हैं। कोई लोहेका यन्त्र है किसी विविध वह चलता है, यदि उसे कोई चलाने वाला न हो तो चलेगा नहीं। चलेगा तो चलता ही रहेगा। इसी प्रकार फल कर्मानुसार मिलता है, यह बात तो सत्य है किन्तु इन कर्मोंका फल देने वाला भी तो कोई होगा। तब वह कर्म फल देने वाला बड़ा हुआ या कर्म बड़े हुए?"

भगवान् बोले—"फल देने वाले की तो कोई आवश्यकता नहीं यह सब स्वभाव काल, कर्म और स्वभावके अनुसार फल

जिस कालमें जीवोंके कर्म भोगोन्मुख होते हैं तो स्वभावानुसार जीवोंकी ऐसी ही प्रवृत्ति हो जाती है। स्वातिकी बूँद गधेकी लीदमें पड़े तो उससे स्वभावानुसार अपने आप बिच्छू पैदा हो जाते हैं जल भी जड़ है, गोबर भी जड़ है इन दोनोंके संयोगसे स्वभावानुसार चैतन्य जीव हो जाते हैं। अच्छा थोड़ी देरको मानलें फल देनेके लिये सुख दुःख आदि फलोंको देनेवाला कोई ईश्वर है तो रहे। उसके रहनेसे कर्मका श्रेष्ठत्व तो सिद्ध नहीं होता फलदेने वाला जो भी होगा, वह कर्मके ही अनुसार तो फल देगा जिसने कर्म किया होगा उसीको तो फल देगा। जिसने कर्म नहीं किया है, उसे तो फल देनेमें वह समर्थ नहीं है। एक आदमी प्रवेश पत्र बेच रहा है। जो नियत मूल्य देता है, उसे वह प्रवेशपत्र थमा देता है, तो बड़ा द्रव्य हुआ या बेचने वाला। बिना द्रव्यके वह दे नहीं सकता। वह भी द्रव्यके ही अधीन होकर बेचनेका काम कर रहा है, अतः प्रधानता तो द्रव्यकी ही रही। इसी प्रकार कर्मोंके फल देनेको तुम किसीकी कल्पना कर भी लो, तो वह भी तो कर्माधीन होकर ही फल देगा।"

नंदजीने कहा—"भाई, देने वाला तो वही है।"

भगवान् ने कहा—"देनेवाला वह कहाँ है। पूर्व संस्कारोंके अनुसार जिसके जो भाग्यमें बदा है उसे तो वह फलदेनेवाला भी अन्यथा नहीं कर सकता। कर्मानुसार प्राप्त वस्तु तो हमें आवश्य मिलेगी आवश्य मिलेगी। जब जीव कर्मोंके ही अनुसार अनुसरण करते हैं, कर्मोंके फल स्वरूप ही सुख दुख भोगते हैं, तो फिर इन्द्रसे क्या प्रयोजन?"

नंदजीने कहा—"भाई, यह बात तो हमारी बुद्धिमें बैठती नहीं। एकदिन एक समयमें दो बच्चे पैदा हुए। एक तो अत्यंत दरिद्रके घर उत्पन्न हुआ, दूसरा अत्यंत धनीके यहाँ। पैदा होते

ही एकको तो समस्त सुखकी सामग्रियाँ प्राप्त होने लगीं दूसरेको पेट भर दूध भी प्राप्त नहीं होता। उन दोनोंने कोई कर्म तो किया नहीं, फिर एक को जन्मते ही सुख क्यों प्राप्त है और उसी कालमें उत्पन्न दूसरेको दुख क्यों मिल रहा है?

भगवानने कहा—"इस जन्मके कर्म न सही, पूर्व जन्मोंमें किये हुए कर्मोंके ही अनुसार उन दोनोंका जन्म धनी और दरिद्रके यहाँ हुआ। एकका कर्म दूसरेको तो मिल नहीं जायगा। एक गोशालामें सहस्र गौएँ एकसी हैं। उनमेंसे जिसका बच्चा होगा, वह अपनी माताको पहिचानकर उसीका दूध पीने लगेगा। इससे सिद्ध हुआ जीव अपने पूर्व स्वभावके पूर्व संस्कारोंके अधीन है। देवता हों, असुर हों, मनुष्य हों, पशु, पक्षी, कीटपतङ्ग तथा और भी समस्त चराचर जगत्‌के प्राणी सभी स्वभावमें स्थित हैं। कोई उत्तम कर्म करनेसे उत्तम योनिको प्राप्त होता है, दूसरा अधम कर्म करके अधम योनिमें जाता है। संसारमें हमारा न कोई शत्रु है न मित्र न उदासीन। कर्मके ही अनुसार शत्रुता, मित्रता उदासीनता होती है, गुरु भी कर्मानुसार ही प्राप्त होता है। प्राप्त क्या होता है कर्म ही गुरुका रूप रखलेता है, कर्म ही गुरु है और ईश्वरभी कर्म ही है। सबसे अधिक आदरणीय कर्म ही है।"

नंदजीने कहा—"अरे, बेटा! कर्मतो हम करही रहे हैं। क्या यज्ञ करना कर्म नहीं है?"

भगवान् बोले—"कर्म क्यों नहीं है, कर्म अवश्यहै। मैं यह थोड़ेही कहता हूँ, आप यज्ञ न करें। यज्ञ अवश्य करें, किन्तु कर्मका आदर करके यज्ञ करें। आपतो इन्द्रके भयसे उसका आदर कर रहेहैं। इन्द्रको ही सबकुछ समझ रहे हैं। कर्म करने को तो मैं मना नहीं करता। कर्मतो सभीको करनाही चाहिये अपने पूर्व जन्मोंके

संस्कारानुसार जिसे जो वर्ण प्राप्त हो, जिसे जो आश्रम प्राप्त हो उस के अनुसार कर्म करे सदा कर्मका ही आदर करे।"

उद्धव ने कहा—"अच्छा यह तो ठीक है, कर्मका आदर करें, किन्तु यज्ञादि में किसीको इष्ट मानकर ही तो पूजा की जाती है। अब इस यज्ञ में इष्ट किसे माने। पूजन किसका करें।"

भगवान्ने कहा—'देखिये, पिताजी! सबका एक इष्ट नहीं होता। कर्मानुसार सबके इष्ट पृथक पृथक होते हैं। जिसके द्वारा जिसकी जीविका सुगमतासे चले, उनके लिये वही उसका इष्टदेव है उसीका उसे पूजन करना चाहिये। एक मल्लाह है, उसकी आजीविका नौकासे चलती है, तो उसे नौकाको ही इष्ट मानकर पूजन करना चाहिये। ब्राह्मण हैं उनका पुस्तकसे आजीविका चलती है उसे पुस्तककी पूजा करनी चाहिये क्षत्रिय है उनकी अस्त्र शस्त्र तथा हाथी घोड़ोंसे आजीविका चलती है तो उसे उन्हींका पूजन करना चाहिये। वैश्य है उनकी तुला (तराजू) से आजीविका चलती है उसे तराजूका पूजन करना चाहिये। स्त्रीकी पतिसे आजीविका चलती है उसे पतिकी पूजा करना चाहिए। इष्टको भोग लगाकर प्रसाद पाना चाहिये। किन्तु इष्ट बनावटी न हो, स्वभावानुसार हो। यह नहीं कि गंगा गये गंगादास यमुना गये यमुनादास। अपने स्वभाव कर्मानुसार इष्ट हो।,

इसपर शौनकजी ने पूछा—'सूतजी! बनावटी इष्ट कैसा होता है?"

सूतजी बोले—'सुनिये महाराज इसपर मैं एक हँसीका दृष्टान्त सुनाता हूँ। एक किसान था किसान। बड़ा सरल था, किन्तु उसकी स्त्री बड़ी तिकड़मी थी। जीभकी बड़ी चटोरी थी। जो स्त्री जीभकी चटोरी होती है, वह अच्छी अच्छी वस्तुएँ बना बना कर चुपके चुपके उड़ा जाती है। अपने पतिको तथा देवर जेठको

देती भी नहीं। वह घरमें अकेलीथी। पति दिनभर खेतपर काम करता। पतिको प्रथम वह रूखी सूखी रोटी बनाकर खिलादेती और उसे हर बैल लेकर खेतपर भेजदेती। पीछे अच्छी सी मैदा को माड़ती। माड़ते समय उसमें घी भी मिलादेती उसका एक भंगा बनाती, उसे आगकी भूभरमें गड़देती। शनैः शनैः राखमें पककर वह लालही जाता। पककर फूटकी भाँति खिल जाता। तब उसे निकालती। उसकी राख झाड़ती। गीले कपड़ेसे उसे पौंछती। उसमें फिर टटका ताजका बनाया सुन्दर सुगंधित घी मिलाती। बूरा मिलाती। प्रसाद तैयार हो गया। अब किसीको इष्ट मानकर भोगभी लगाना चाहिये। वह अपने यथार्थ इष्ट पतिको तो ठगनाही चाहती थी, इसलिये उसने घरकी देहली को मन चटी इष्टदेवी बनालिया। उस प्रसादका नाम उसने रखा था' भूभरिया भोग' क्योंकि वह भोग भूभरमें ही पकताथा। इसलिये वह अपनी इष्ट देवी देहके ऊपर बैठ जाती और इस मंत्रको पढ़ती—' सुनि सुनि री देहरिया रानी। मेरे नहीं सास जिठानी। जो तेरी आज्ञा पाऊँ, तो भूभरिया भोग लगाऊँ।" इस मंत्रको पढ़कर अपने ही आप फिर कह देती 'हाँ लगाइले लगाइले" बस जल छिड़क कर उस भूभरिया भोगको गट्ट गट्ट खा जाती। ऐसा सुन्दर नित्य भूभरिया भोग पाते पाते वह लाल पड़ गई। किसान बेचारा दुबला पतला होता जाता था। उसने सोचा-घरमें तो सूखी रोटी और सागही बनता है उससे यह लाल क्यों पड़ती जाती है। कुछ न कुछ इसमें कारण है। वह इसकी खोज लगाने लगा।

शत्रु मित्र तो सभीके होते हैं, किसीने किसानसे कहा—" तेरी बहू तो नित्य भूभरिया भोग, उड़ाती है। एक दिन वह चुपकेसे खेतमें से लौटकर घर आया। संयोगकी बात उसी समय उस स्त्रीका 'भूभरिया भोग' तैयार हुआ था। अपनी

इष्टदेवी देहरी पर बैठकर वह इस मत्रको पढ़रही थी ' सुनि सुनि री देहरिया रानी, मेरे सास न जिठानी। जो तेरी आज्ञा पाऊँ तो भूभरिया भोग लगाऊँ, फिर अपने ही आप बोली "लगाइले लगाइले " इतना कहकर भट्ट भट्ट उस भोगको खागई किसान लौटकर खेतपर चला आया। उसने सोचा—' मेरी स्त्री तो बड़ी निकडमिन है, मालभी उड़ाती है और भोग लगाक खाती है। उसने देहरीको बनावटी इष्टदेवी बना रखा है। मैं भी ऐसा ही एक बनावटी इष्ट देव बनाऊँ और इसे इसकी करनी का फल चखाऊँ। यह सोचकर उसने अन्न भरने के कुरे (कुठला) को अपना बनावटी इष्ट बनाया।

दूसरे दिन नियमानुसार उस स्त्रीने फिर भूभरिया भोग बनाया। आज किसान पहिलेसे ही आकर छिपा था। जब उसने भोग लगाकर देहली पर बैठकर यह मंत्र पढ़ा—"सुनि सुनि देहरिया रानी मेरे सास न जिठान।" जो तेरी आज्ञा पाऊँ तो भूभरिया भोग लगाऊँ और अपने ही आप 'लगाइले लगाइले कहकर खाने लगी तभी किसान डंडा लेकर निकला और सामने के कुरे को हाथ जोड़कर बोला—" सुनि सुनि रे भैया कुरे मेरे ससुर न मारे। जो तेरी आज्ञा पाऊँ, तो जा —"ठगिनी कुटक बनाऊ फिर-अपने आपही बोला—"बजाइले बजाइले ऐसा कहकर—' फिर उसने उसकी अच्छी प्रकार डंडों पूजा की।

सूतजी कहते हैं—' मुनियो ' इसे बनावटी इष्ट कहते हैं यह दम्भ है पाप है। जिससे अपनी आजीविका चले उसीको इष्ट मानकर पूजना चाहिये। भगवान् कर्मवाद की पुष्टि कर का ये सब बातें कह रहे हैं। गोपोंको समझाते हुए कह रहे हैं— देखो, भाई ' जिससे अपनी आजीविका चले उसी एक देवता की पूजा उपासना करनी चाहिये। जो आज एक की उपासना क

रा है, कल दूमरे की परसों तीसरे की—इस प्रकार करने वाले को कभी शान्ती नहीं होता। जैसे व्यभिचारिणी स्त्री है, आज एकसे प्रेम किया, कल दूसरेसे परसो तीसरेसे। उसका किसीमें स्थाई प्रेम नहीं होता वह नित्य नये पति चुनती है और उसके प्रति प्रेम प्रदर्शित करती है। जैसे उसे कभी शांति नहीं मिलती उसी प्रकार इधरसे उधर नित्य इष्ट बदलने वाले को शांति नहीं मिलती।

नंदजी ने कहा—" तो भैया ! किसीका इष्ट कौन हो सकता है ? हमें किसकी पूजा करनी चाहिए ?"

भगवान् बोले—" देखो, ब्राह्मणकी वृत्ति वेदसे है अतः वेद ही ब्राह्मणका इष्ट है। क्षत्रियकी वृत्ति पृथिवीका पालन है, अतः पृथिवी ही उनकी इष्ट देवी है। वैश्यकी वृत्ति व्यापार है, अतः लक्ष्मी उनकी इष्ट है। शूद्रकी वृत्ति सेवा है अतः द्विजाति ही उनके इष्ट है। वैश्योंकी वृत्ति चार प्रकारकी बताई है, खेती करना व्यापार करना गोरक्षा करना तथा तथा व्यापार रुपये उठाना। इनमें एकसे दूसरी निकृष्ट है। अर्थात् खेती करना सर्वोत्तम है, उससे नीचे व्यापार है, व्यापारसे भी नीचे रुपये आदिके विक्री है और सबसे नीच वृत्ति है व्याजसे आजीविका चलाना।"

नंदजी ने कहा —"तो फिर भैया। हम लोग किसमें रहें ?"

भगवानने कहा—"हम लोग खेती, व्यापार या लेन देन भी करते नहीं हमारी तो एक मात्र आजीविका गोरक्षा ही है। गौएँही हमारी इष्ट देवी हैं। अतः हम लोगोंको गौओं की पूजा करनी चाहिये और गौओंको जहाँसे आहार मिलता है, उसी पर्वतकी पूजा करनी चाहिये।"

नन्दजीने कहा—"अरे, भैया, गोवर्धन तो गौओंको घास देता ही है किन्तु यदि इन्द्र वर्षा न करें तो गोवर्धन पर घास होगी कैसे ? वर्षा करने वाले तो इन्द्र ही हैं।"

भगवानने कहा—'पिताजी ! मैं पहिले, [illegible] पूछता, हूँ

भगवान् में भक्ति होती है। कर्मानुसार ही समय समय पर वर्षा होती है, फिर इसमें इन्द्रकी क्या आवश्यकता है?'

नन्दजीने कहा—"भैया! वंश परम्पर से यह पूजा चली आई है। सबलोग इसे करते आये हैं। कुलागत धर्मको कैसे छोड़े?"

भगवान् बोले—"पिताजी यह सब बातें तो नगर निवासी नागरिकों के लिये या पुरवासियों अथवा नगर वासियों के लिये हो सकती हैं। हमारे न कोई पुर है न नगर है और न ग्रामही। हम तो वनवासी है, नित्यही वनोंमें पर्वतों की कन्दराओं में रहते हैं। शकटही हमारे घर हैं। जहाँ इच्छा हुई गाड़ा जोत दिये गौओंको बाँधदिया हमारा निवास स्थान बनगया। हम कोई एक स्थानमें घर बना कातो रहते नहीं। जिसवनमें गोओंके लिये सुन्दर घास देखी जलका सुपास देखा वहीं डेरा डाल दिया। हमारे तो इष्ट ये हमारे पुरोहित ब्राह्मण हैं, ये गौएँ हैं और यह गिरिराज गोवर्धन पर्वत है। यही हमारे पूज्य हैं, इन्हीं की पूजा होनी चाहिये।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जब भगवान्ने इस प्रकार अनेक युक्तियाँ देकर इन्द्रके निमित्त किये जाने वाले यज्ञ का खण्डन किया। तो सभी गोप आश्चर्य चकित हो गये। प्रतिवर्ष यज्ञ करते थे, अतः यज्ञकिये बिना रहभी नहीं सकते थे' साथही उन्होंने श्री कृष्णके अनेक अलौकिक कर्म देखे थे। अनेकों असुरोंको भगवान्ने बातको बातमें मारदिया था। भगवान्के दर्शनोंको बहुतसे ऋषिमुनि आते थे, वैसेभी भगवान्की रूप माधुरी वेणुमाधुरी और लीलामाधुरीके कारण सभी व्रजवासी आकृष्टथा अतः वे उनकी इच्छाके विरुधभी कुछ करना नहीं चाहते थे। इसलिये उन्होंने भगवान्से ही पूछा कि अब हम करें

क्या ? जो हमें करना हो, जिसके करनेसे अनिष्ट न हो सुख शान्तिकी प्राप्ति हो, उसी कर्मका हमें उपदेश करो। इसपर भगवान् ने जो गोवर्धन पूजनका प्रस्ताव किया, उसका वर्णन मैं आगे करूँगा।"

छप्पय

विप्रवेद तैं करैं जीविका क्षात्रिय महि तैं।
वैश्य वनिज कृषि धेनु व्याजके मिले धनहि तैं॥
करिके सेवा शूद्र द्विजनिकी वृत्ति चलावें।
जो स्वधर्म महँ रहें अन्त महँ सद्गति पावें॥
देहिं घास. जल मूल फल, गोप इष्ट गिरिराज हैं।
पूजो गिरिवर धेनु द्विज, पूरन सबही काज हैं॥

—: :—

गोवर्धन पूजाका प्रस्ताव

(१४८)

तस्माद् गवां ब्राह्मणानामद्रेश्चारभ्यतां मखः।
य इन्द्रयागसम्भारास्तैरयं साध्यतां मखः॥ *

(श्रीभा० १० स्क० २४ अ० २५ श्लो०)

छप्पय

पूरी छुन छुन छनें कचौरी खस्ता सुंदर।
रबड़ी लच्छेदार खीर केसरिया सुखकर॥
हलुआ माहनथार जलेबी घेरा मठरी।
टिकिया पूआ बड़े सोंठ पापर अरु पपरी॥
व्यंजन सब सुन्दर बनें, दाल, भात, रोटी, कढ़ी।
साग, रायते विविध विधि, उड़द मूँग भाख-बड़ी॥

वास्तवमें पूजा वही सुन्दर सुखकर और रुचिकर होती है, जिसमें तर माल मिलें। जहाँ सूखे शङ्ख बजते हों, ऐसी पूजाको तो घर बैठे ही हाथ जोड़ दे! जिसमें प्रसादका सौलझाल नहीं वह पूजा ही

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! भगवान् नन्दजीसे कह रहे हैं—"देखो, पिताजी! हम लोग वनवासी हैं, इसलिये सब लोगोंको मिलकर गौओंकी ब्राह्मणोंकी और गोवर्धनपर्वतकी पूजा करनी चाहिये। जो सामग्री आपने इन्द्रयागके लिये एकत्रित की है इससे यह गोवर्धन-पूजन यज्ञ हो।"

क्या ? शुभकर्मका फल शुभ प्रमाद है। मनकी परम प्रसन्नता ही सबसे बड़ा प्रमाद है जिस कर्ममें मन आह्लादित होता हो। जिस पूजामें सभीका समन उत्साह हो, वही पूजा पूजा है। शेष तो पेटपूजा है अपने व्यवसायके ढँग हैं। केवल आजीविकाके लिये की हुई पूजा व्यवसाय चलानेका उपकरण मात्र है। पूजाकी सफलता इष्टके प्रकट होनेमें है। जिस पूजासे इष्ट प्रकट हो जाय, वही यथार्थ पूजा है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! जब अनेक युक्तियोंसे भगवान्ने इन्द्रकी पूजाका निराकरण किया, तो नन्दजीने पूछा—'अच्छा, भैया ! अब तू ही बता, किसका पूजन करें ? किसके उद्देश्यसे यज्ञ करें ?"

भगवान् बोले—"पिताजी ! प्रत्यक्ष देवोंको छोड़कर परोक्ष देवोंके पीछे क्यों पड़ना ? पृथिवीपर गौ, ब्राह्मण और गोवर्धन-पर्वत ये ही तीन प्रत्यक्ष देव हैं। इन तीनोंका ही पूजन हो। गिरिराजका तो भोग लगे। वेदपाठी ब्राह्मण आवें, विधि विधान पूर्वक अग्निहोत्र करें। नाना प्रकारके द्रव्य, अन्न, वस्त्र तथा गौएँ दान दक्षिणामें पावें। गौओंको सजाया जाय, उन्हें हरी हरी घास खिलायी जाय। मेरी बुद्धिमें तो ऐसा ही उत्सव मनाना चाहिये।"

नन्दजीने पूछा—"तो भैया ! इस तेरे यज्ञके लिये फिरसे नयी सामग्री इकट्ठी करनी होगी क्या ?"

भगवान् बोले—"अजी, नहीं पिताजी ! नयी सामग्रीकी क्या आवश्यकता है, आपने जो यह इतनी सामग्री इन्द्रयागके निमित्त एकत्रित की है, उसीसे इस यज्ञका अनुष्ठान होने दीजिये। किन्तु एक बात है मेरा देवता इन कच्चे जौ तिल, चावलसे स्वाहा स्वाहा करनेसे सन्तुष्ट होनेवाला नहीं है। इसके लिये तर माल चाहिये।

नन्दजीने कहा—"हाँ भैया! यही तो हम पूछते हैं, क्या क्या माल चाहिये। तेरे देवताका तो हम स्वभाव अभी जानते भी नहीं, यह भी नहीं जानते वह कौन-सी सामग्रीसे सन्तुष्ट होगा। अब तक तो हम प्रति वर्ष इन्द्रकी ही पूजा करते थे। हमारे लिये तो गोवर्धन नया ही देवता है।"

भगवानने कहा—"अच्छा, आपने आजतक अपने देवताको कभी प्रत्यक्ष भोग लगाते देखा है?"

नन्दजीने कहा—"भैया! देवता तो परोक्ष प्रिय होते हैं। अग्नि देवताओंका मुख है, वेही सब देवताओंको हवि पहुँचाते हैं। हमने अग्निमें शाकल्य जलते तो देखा है। इन्द्रको प्रत्यक्ष खाते तो देखा नहीं। खाते क्या, आजतक हमने तो कभी इन्द्रके दर्शन भी नहीं किये।"

भगवान् बोले—"आप मेरे देवताको देखें, वह प्रत्यक्ष होकर आप सबके सम्मुख प्रसाद पावेगा। आप सब उसे प्रसाद पाते हुए देखेंगे।"

इसपर सब गोप आनन्दके साथ बोल उठे—"बाबा! बाबा! अबके कनुआके ही देवताकी पूजा करो। इन्द्रकी इतने दिनोंसे पूजा कर रहे हैं, इन्होंने तो कभी दर्शन दिये नहीं। कनुआका देवता सबके सम्मुख प्रकट होगा, यह बड़े आनन्दकी बात है, हम सब उसके दर्शन करेंगे।"

यह सुनकर नन्दजी बोले—"अच्छी बात है, यदि आप सबकी ऐसी ही सम्मति है, तो ऐसा ही हो किन्तु देवता नया है, कनुआ ही उसकी नस नाडीको पहिचानता होगा इससे पूछ लो, वह क्या खाता है। वे ही वस्तुएँ उस देवताके लिये तैयार की जायँ।"

भगवान् बोले—"मेरे देवताके खानेकी बात मत वह खाता बहुत है और नाना भाँतिके लड्डू, मीठे, ..

कमेले, कड़वे तथा नमकीन इन षडरसोंसे युक्त भक्ष्य, भोज्य, लेह्य और चोष्य इन प्रकार चारों प्रकारके पदार्थोंको उड़ाता है। अब सब लोग इन पदार्थोंको यथेष्ट बनावें।"

नन्दजीने कहा—'अरे, कुछके नाम तो बता दे।"

भगवान् बोले—"नाम क्या बताऊँ, कच्चे, पक्के फलाहारी दूधवरके सभी पदार्थ बनें। टकोरेदार सुन्दर पतली-पतली फूली फूली पूड़ियाँ छनने दो। रबड़ीके समान अधौटा दूधकी खीर घुटने दो। सभी प्रकारके पदार्थ बनें। पूड़ी, पूआ, कचौड़ी, सकलपारे, टिकियाँ, बड़े, गुँझियाँ, लड्डू, तिकोना, समोसे सभी बनाये जायँ। दूधका खोया बनाकर उसके लड्डू, पेड़ा, बरफी, गुलाबजामुन, गुँझियाँ आदि खोयेकी मिठाइयाँ बनायी जायँ। दूधको फाड़कर उसके छैनेसे रसगुल्ला, चमचम, सँगलता आदि मिठाइयाँ बनें। छैनाका नमकीन साग भी बने। दूधकी खीर बनें, रबड़ी बने, खुरचन बने। मलाईकी पूड़ियाँ बने मलाईके पूए बनें और भी मलाईकी जो मिठाई बनती हों सब बनें। दहीसे श्रीखण्ड बनें, पचामृत, दही बड़े बनें, सौंठ बने। कद्दू, थया, बथुआ, निकुती, ककड़ी, पोदीना आदिके रायते बनें। मूँग उड़दकी दालकी पकोड़ियाँ बड़े, इमरतियाँ आदि बनें। मूँगकी दालकी कढ़ी भी बने। बेसनके लड्डू, निकुती, नमकीन पपड़ी, सकलपारे आदि अनेक व्यञ्जन बनें। गेहूँके आटेकी जितनी वस्तुएँ बना सको बनाओ। सूजीका रवादार संयाव-हलुआ-बने जिसमें गोवर्धनको दाँत लगानेकी भी आवश्यकता नहीं। मुखमें रखा, कि भट्ट गलेमें नीचे उतर गया। यह बात नहीं कि हमारे देवताके यहाँ पक्की रसोई कच्ची रसोईका विचार हो। यह कच्चे पक्केमें भेद-भाव नहीं मानता। आप-पतले पतले फूले फूले फुलका बनावें। मिस्सी नमकीन रोटियाँ बनावें। मूँग उड़दकी दालकी

चुनी मिलाकर नमकीन हाथकी गोलाकार रोटियाँ बनावें। बढ़िया सुगन्धित बाँसमती चावल भी बने । फिलौरी और पकौड़ीदार कढ़ी भी बने। जितने प्रकारके साग मिलें सबको पृथक् पृथक् भी बनाओ और एकमें मिलाकर भी बनाओ। अन्नकूट हो' जो ठहरा । बाजरेको कूटकर उसका भी भात बनाओ। मेरा देवता फलाहारी भी उड़ता है; अतः कूटूके राम-दानेके भी जितने पदार्थ बना सको उनको भी बनाओ। ऋतुके जो भी फल मिल सकें सबको एकत्रित करलो। कहनेका अभि-प्राय इतना ही है. कि जितने भी पदार्थ बना सकते हो सब बनाओ। कमसे कम छप्पन प्रकारके पदार्थ तो हो ही। अधिक जितने भी हों उतने ही अच्छे। दाल भातसे लेकर खीर, पूड़ी पूआ, हलुआ सभी बनें।

गिरिराज गोवर्धनको पूजाकरके उनका भोग लगाकर प्रसादी पदार्थोंसे ब्राह्मणसे लेकर चाण्डाल पतित पर्यन्त, गौसे लेकर कुत्ते तक सभीका तृप्त करो। सबको यथायोग्य देकर फिर तुम सब भी अपने बन्धु बान्धव तथा जाति कुटुम्बवालोंके सहित प्रसाद पाओ। प्रसाद पानेके अनन्तर सभी स्त्री पुरुष बाल वृद्ध अच्छे अच्छे नये वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत होकर गिरिराज गोवर्धनकी जय जयकार बोलते हुए उनकी प्रदक्षिणा करो। गौओं और ब्राह्मणोंकी भी प्रदक्षिणा करो। पिताजी ! मेरी तो सम्मति यही है, फिर आप सब बड़े हैं, जो उचित समझें वही करें। इस यज्ञसे गौएँ बहुत प्रसन्न होंगी । ब्राह्मणोंका पूजन होगा, उन्हें दान दक्षिणा मिलेगी, अतः वे भी प्रसन्न होंगे। गिरिराज गोवर्धन पर्वत प्रत्यक्ष होकर आपको दर्शन देंगे और आपकी की हुई पूजाको ग्रहण करेंगे। मुझे भी इस गोवर्धन पूजासे बड़ी प्रसन्नता होगी ।"

यह सुनकर नन्दादि गोप बोले—"भैया ! हमें तो तेरी ही

प्रसन्नता चाहिये। जिस बातमें तू प्रसन्न रहे, उसे तो हम प्राणोंका पण लगाकर करनेको तत्पर हैं, और चाहें जो रूठ जायँ तू न रूठना चाहिये। हमें तो तुझे प्रसन्न करना है। तुझे प्रसन्न कर लिया तो, मानो विश्व ब्रह्माण्डको प्रसन्न कर लिया।"

इसपर कुछ दुर्बल हृदयके गोप बोले—"भाइयो! सब बात समझ बूझ लो। इन्द्र सभी देवताओंके राजा हैं। पूजा न होनेसे ऐसा न हो, वे क्रुद्ध हो जायँ। क्रुद्ध होकर उन्होंने वर्षा बन्द करदी, तो हमारा तो सर्वनाश हो जायगा।"

इसपर दूसरे भगवत् विश्वासी गोप बोले—"अरे, तुम लोग इतने दिनसे कृष्णके बल पुरुषार्थको देख रहे हो, फिर भी *तुम्हें विश्वास नहीं होता। जिसने बाल्यकालमें ही पूतना,* तृणावर्तासुर, शकटासुर आदिको मारा अघासुर, बकासुर. धेनुकासुर आदि दैत्योंको बलदेवजीके साथ मारा, इतने प्रचंड पराक्रमी कालियको यमुना ह्रदसे निकाला, क्या वह इन्द्रके मानको मर्दन नहीं कर सकता। क्या वह क्रुद्ध हुए शक्रके गर्वको खर्व करनेमें समर्थ नहीं हो सकता। जिसने हम सबकी आँधीसे वायुसे तथा वर्षासे रक्षा की। जो दावानलको बातकी बातमें पान कर गया, उसके आगे इन्द्र क्या करेगा। अब सब शङ्का को हृदयसे निकाल दो और कृष्णके कहे हुए देवताकी निर्भय और निःशङ्क होकर पूजा करो।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार गोपोंने श्रीकृष्ण-भगवान्‌की आज्ञा मानकर इन्द्र यज्ञके स्थानमें गिरिराज गोवर्धनकी पूजाका निश्चय किया।"

छप्पय

व्यञ्जन सरस बनाइ शैलकूँ भोग लगाओ।
भोजन द्विजनि कराइ प्रेमतैं माल उड़ाओ॥
पावें सब परसाद महोत्सव मधुर मनावें।
गिरि परिकम्मा करें गीत गोपी मिलि गावें॥
मेरी तो सम्मति जिही, जिह मत मम मतिमहँ खरो।
सुनि सब बोले गोप तब, कृष्ण कहे सोई करो॥

—❀—

गिरिराज गोवर्धनकी पूजा

(९४९)

कृष्णस्त्वन्यतमं रूपं गोपविश्रम्भणं गतः।
शैलोऽस्मीति ब्रुवन्भूरि बलिमादद्बृहद्वपुः॥*
(श्रीभा० १० स्क० २४ अ० ३५ श्लो०)

छप्पय

त्यागि इन्द्र मख गोप करें पूजा गिरिवरकी।
भई विप्र, गिरि धेनुयज्ञमहँ सम्मति सबकी॥
लागे छप्पन भोग श्याम गोवरधन बनिकें।
करि करि लम्बे हाथ उठाये व्यजन तनिके॥
खिचरी, पूरी, मिठाई, मटके सट सट साग सब।
देखि देव प्रत्यक्ष गिरि, भयो सबनि विश्वास अब।

भगवत वचनोंमें विश्वास यही मानवकी प्रथम और अन्तिम सीढ़ी है। जो कर्म करे, भगवानकी आज्ञा समझकर करे। उसमें सुख हो उसे भगवानको सौंप दे दुःख हो तब भी उन्हीं-

---

* श्री शुकदेव जी कहते हैं—'राजन्! गोपोंको विश्वास दिलाने के निमित्त नंदनन्दन भगवान श्रीकृष्णचन्द्रने एक अत्यंत डील डौल वाला बृहद्काय दूसरा स्वरूप धारण किया और यह कहते हुए कि मैं ही गिरिराज गोवर्धन पर्वत हूँ, उन्हों ने सब भेंट पूजायें ग्रहण कीं।

की शरणमें जाय। ऐसे अनन्य उपासकके दुख सुखको मेटकर श्यामसुंदर परात्पर सुख देते हैं। जीवको रूढ़ियोंमें मोह हो गया है। वह अलौकिक वैदिक परम्पराओंको त्यागकर लोक वेदसे परे निस्त्रैगुण्य होना चाहता नहीं। उन्हीं लोक मर्यादा आदिमें फँसा रहना चाहता है। जब तक जीव सर्व धर्मोंका मोह छोड़कर एकमात्र श्रीहरिका आश्रय नहीं लेता तब तक श्रीहरि उसके सम्मुख प्रकट नहीं होते। जब तक देव प्रत्यक्ष नहीं होते, तब तक साधना पूरी नहीं होती अतः अपनेको सर्वात्मभावसे भगवानके अर्पण कर देना यही जीवका परम पुरुषार्थ है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! अब इन्द्र यागकी बातको तो गोप गण भूल गये। अब सभी गोवर्धनकी पूजाकी तैयारियाँ करने लगे। यज्ञेशको इन्द्रका मद चूर्ण करना था। इसीलिये उन्होंने ऐसी ऐसी अटपटी बातें स्वीकार करलीं। उन्होंने जैसा कहा वैसा उन्होंने काम किया। सब लोग भाँति भाँतिके व्यंजन बना बनाकर छकड़ोंमें लाद लादकर गिरि गोवर्धन पर्वतके समीप आये। वहाँ आकर विधिवत् सकल्प किया, स्वास्तिवाचन पूर्वक गिरिराजकी षोडशोपचार पूजाकी। पूजाके समय ही ब्राह्मणोंने कहा—गंगाजल स्नानं समर्पयामि।" हे व्रजराज! गिरिराजको अब गंगाजलसे स्नान कराइये।"

तब घबराकर नन्दजी बोले— ब्राह्मणो! गंगाजलकी शीशी लाना तो हम भूल ही गये। अब क्या किया जाय, कहो तो जल से ही स्नान करावें।'

इस पर भगवान् बोले—"पिताजी! गंगादेवी तो सर्व व्यापक हैं। हमारा हार्दिक प्रेम होगा तो गंगाजी यहीं प्रकट हो जायँगी। जब प्रेमसे परमात्मा प्रकट हो जाते हैं, तो गंगादेवी प्रकट न होंगी। आप प्रेम पूर्वक मनसे गंगाजीका ध्यान करें।"

यह सुनकर ब्रजराज मनमे पतितपावनी भगवती सुरसरिका ध्यान करने लगे। मनसे ध्यान करते ही प्रभुकी प्रेरणासे मानसी गगाका स्रोत वहीं गिरिगवर्धनसे निकल पड़ा। काँचके समान स्वच्छ सुंदर निर्मल नीर वहाँ हिलोरें लेने लगा, सबने कहा—'भैया! कनुआका देवता तो बड़ा चमत्कारी है, देखो यहा गंगाजी बुला लीं। अब हम सब सदा इसीकी पूजा किया करेंगे, किन्तु कनुआ कहता था, देवता प्रत्यक्ष प्रकट होगा, सो अब तक प्रत्यक्ष तो प्रकट नहीं हुआ।"

ब्राह्मणोंने जब पचामृतस्नान, गंधस्नान, शुद्ध गंगाजलस्नान कराके, यज्ञोपवीत वस्त्र, अलंकार, धूप तथा दीप आदि देकर सब गोपोंसे नैवेद्य रखनेको कहा, तो समस्त गोपोंको विश्वास दिलानेके निमित्त भगवान श्रीकृष्णचन्द्रने स्वयं अपना एक विशालकायरूप प्रकट किया। बड़ा भारी डील डौलका स्वरूप बनाकर पर्वतके ऊपर खड़े होकर कहने लगे—"मैं ही गिरिराज गोवर्धन पर्वत हूँ।"

एक रूपसे तो भगवान् गोपोंमें ही मिले थे, दूसरे रूपसे गोवर्धन बने पर्वतपर खड़े थे। गोप रूपसे अब अपने सभी ब्रजवासियोंसे बोले—"अरे, देखो! कैसा आश्चर्य है भाइयो! तुम्हारे प्रेमको धन्य है, तुम्हारी पूजासे प्रसन्न होकर गिरिराज स्वयं प्रकट हो गये हैं। उन्होंने मूर्तिमान होकर हम सबपर कृपाकी है हमारा बड़ा सौभाग्य है।"

गोपोंने देखा ये गिरिराज देखनेमें रूप रंगमें, चितवनमें कनुआकी ही भाँति दिखाई पड़ते हैं। वे आश्चर्य चकित होकर गिरिराजकी उस मनोहर मूर्तिको देखतेके देखते ही रह गये। बार बार कहते—"कनुआके देवताका स्वरूप भी कनुआकी ही भाँति है।"

यह सुनकर भगवान कहने लगे—'अरे, तुम लोग इतने

विस्मित क्यों हो रहे हो। ये गोवर्धननाथ सर्वशक्तिमान हैं। ये जैसा चाहें वैसा रूप धारण कर सकते हैं। ये पूजा करने वालोंको इच्छानुसार फल देते हैं और जो वनवासी इनकी पूजा नहीं करते, निरादर करते हैं उन्हें ये यथेष्ट दंड देते हैं। नष्टकर देते हैं इसलिये आओ हम सब मिलकर अपना और गौओंका कल्याण करनेवाले इस प्रत्यक्ष देवको प्रणाम करें।"

यह कहकर अपने आप ही अपने रूपको प्रणाम करने लगे। समस्त गोपोंने भी उनका अनुकरण किया।

तब ब्राह्मणोंने कहा—'अच्छी बात है अब भोग लगाओ।'.

यह सुनकर सभी गोप. पूड़ी, हलुआ. खीर. मोहन भोग, आदि पदार्थ गोवर्धनके आगे रखने लगे। गिरिराजने अब प्रसाद पाना प्रारम्भ किया। वे एक दो लड्डू नहीं उठाते। पूरी-की पूरी लड्डुओंकी डलिया उठाई, सबका एक साथ चटकर गये। हलुएका पूरा थाल उठाया और गप्पा मार गये। खीरकी रूई की कढ़ाई को मरसे सपोट गये। सामने साग पड़ गया तो सागका ही सफायाकर दिया। रायतेकी हंडी आई तो उसे ही पी गये। गोपोंने देखा— भैया! यह ऐसे ही खाता रहा, तो हमारे लिये तो कुछ प्रसाद छोड़ेगा नहीं। इसलिये कुछ लड्डुओं की डलियोंको हलुएके थरोंको गाड़ के नीचे सरकाने लगे। गोवर्धननाथने लम्बेहाथ किये और गाड़ाके नीचेसे ही लड्डू आके थोररोंको उठाने लगे। तब गोप आपसमें कहने लगे— 'आनो और आनो अर्थात् और लाओ और लाओ।" इसलिये गोवर्धनके समीप आनौर नामक ग्राम अभी तक विद्यमान है।

नंदजी देख रहे थे, कि यह देवता तो बड़ा खाने वाला है इसका मुँह बंद ही नहीं होता। इसकी चालमें भी शिथिलता नहीं कैसा भूखा है यह।

भगवान बोले—"देखो, तुमने बहुत दिनोंसे इसकी पूजा

नहीं जी, यह देवता बहुत दिनोंका भूखा है, इसे भर पेट खाने दो, खाकर यह फिर तुम्हारे सब पदार्थों को ज्यों का त्यों पूरा कर देगा।"

नंदजी ने कहा—"ना, भैया! हम रोकते थोड़े ही हैं भर पेट खाले।"

इधर गोवर्धन देव बिना रुके उड़ा रहे थे। खाते खाते वे रुकगये और बार बार दाँतोंको जीभसे कुरेदने लगे। नंदजी समझगये, कोई लड्डू गिरिराजके दाँतोंमें हिटक गया। इसपर नंदजीने कहा—"अरे, भैया, कोई दाँत कुरेदनेके लिये नीमकी सींक दे दो।"

यह सुनकर कुछ ग्वाल बाल सींक लेने दौड़े। इसपर भगवान् बोले—"अरे, सारे ओ! सींकसे इसके इतने बड़े मुखमें क्या मालूम पड़ेगा। कोई बड़ीसी बल्ली उठाकर दो जिससे दाँत कुरेद सके।" यह सुनकर सब हँसते हँसते लोट पोट होगये। एकने बड़ी सी बल्ली गोवर्धन देवके हाथमें थमादी। उन्होंने बल्लीसे जो दाँतोंको कुरेदा, तो मनो हलुआ नीचे गिर पड़ा फिर वे व्यंजनों को उड़ाने लगे।"

पेट भरकर प्रसाद पाकर गिरिराज बोले—"गोपो! मैं तुमसे सन्तुष्ट हूँ तुम जो चाहो, सो वर माँगलो।"

यह सुनकर सभीने हाथ जोड़कर कहा—"हे गिरिराज! यदि आप हम पर प्रसन्न हैं तो यही वर दीजिये, कि हमारा यह पशुआ सदा सुखी बना रहे। हम सब सदा इसे प्रसन्न चित्त करते ही रहें।"

'तथ स्तु' कहकर गिरिराज अन्तर्धान हुए। फिर गोपोंके पदार्थोंके पात्र ज्योंके त्यों भर गये। गोवर्धननाथके प्रसादसे गोपोंने पहिले ब्राह्मणों को तृप्त कराया। उन्हें सुन्दर सुंदर

रत्न, आभूषण सुवर्ण मुद्रायें तथा गौएँ दानमें दीं। फिर गौओं को हरी हरी घास खिलाया। ब्राह्मणोंने आशीर्वाद दिये। तब भगवान् बोले—"देखो, भाई पहिले गिरिराजकी परिक्रमा और दे लो, तब सब मिलकर प्रसाद पावेंगे।"

यह सुनकर सभी गोप गोपी बड़े उत्साहके साथ सज धज कर-वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित होकर-गोवर्धनकी परिक्रमा करने लगे। सबने पूरी परिक्रमा दी। परिक्रमा करके सभीने मानसी गंगाके आस पास डेरा डाले. फिर सबने गोवर्धन नाथकी जयजयकारसे आकाश मंडलको गुंजादिया। हाथ पैर धोकर सबने प्रेम पूर्वक प्रसाद पाया। फिर सब विश्राम करने लगे।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! उन दिनों समस्तगोप गिरिराजकी तलहटीमें ही अपनी गौओंके सहित ठहरे हुए थे। इस प्रकार भगवान्की आज्ञा मानकर उन सबने विधिपूर्वक गोवर्धन का गौओं और ब्राह्मणोंका पूजन किया, प्रसाद पाया आराम किया और श्रीकृष्णचन्द्रको साथ लेकर अपने निवास स्थान पर आगये। अब जैसे इन्द्रने ब्रजवासियों पर कोप किया, उस कथाको आगे कहूँगा।

छप्पय

पूजाके ईं समय मानसी प्रकटीं गंगा।
सुंदर निर्मल नीर निकट गिरि तरल तरंगा॥
गोवर्धनकूँ पूजि द्विजनि परसाद पवायो।
परिक्रमा पुनि करी हर्ष हियमहँ अति छायो॥
पाया प्रेम प्रसाद पुनि, पय पी सब ब्रजमहँ गये।
गिरिवर पूजातैं सकल, प्रमुदित ब्रजवासी भये॥

इन्द्रका व्रजवासियोंपर कोप

(९५०)

इन्द्रस्तदात्मनः पूजां विज्ञाय विहतां नृप।
गोपेभ्यः कृष्णनाथेभ्यो नन्दादिभ्यश्चुकोप सः ॥*

(श्रीभा० १० स्क० २५ अ० १ श्लो०)

छप्पय

इत सुरपति जब सुनी नंद मम भाग न दीयो।
समुझयो निज अपमान कोप गोपनिपै कीयो॥
सोचे सुरपति कृष्ण कलिहको छोरा छोटो।
मानि गोप तिहि बात काज कीयो अति खोटो॥
अच्छा इनके गर्वकूँ, अबहीं खर्व कराउँगो।
वर्षा विकट कराइकें, व्रजकूँ आज डुबाउँगो॥

भगवान्ने छोटेसे लेकर बडेतक सबके मनमें ऐसा अभिमान भरदिया है, कि वह अभिमान करने वालेको भूलकर अपनेको ही सबकुछ समझता है। भगवानके बिना किसीकी सत्ता नहीं जिसकी सत्ता है, उसे अभिमान है। संसारमें ऐसा कोई प्राणीनहीं

---

* श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! जब इन्द्रने देखा, कि व्रजवासी गोपोंने मेरी पूजा करनी छोड़दी है तो जिनके श्रीकृष्ण ही एकमात्र नाथ हैं उन गोपोंपर देवराजने अत्यंत कोप किया।

देखिये, जिसे अपनेपनका अभिमान न हो छोटेसे छोटेको, दरिद्रसे दरिद्रको दुखसे दुखी को देख पूछो । वही कहेगा हम किसीसे कम थोड़े हैं। चींटी को दबाओ वह भी क्रोध करके काटती है, वह भी अपमानसे क्रुद्ध हो जाती है। क्रोधका कारण है मिथ्याभिमान। हमने देहको ही आत्मा मान रखा है। आत्मा तो सबसे श्रेष्ठ है ही उसीकी सत्तासे सभी अपने को श्रेष्ठ समझते हैं किन्तु वे भ्रमवश देहको ही आत्मा मानकर उसके सुख दुखसे सुखी दुखी होते हैं। आत्माका कोई क्या अपमान कर सकता है, वह तो मान अपमानसे रहित है किन्तु शरीरको आत्मा माननेवाले अज्ञानवश देहके अपमानको ही अपना अपमान समझते हैं। क्रोध करते हैं, दुखी होते हैं। यही अज्ञान है यही भ्रम है। संसारमें क्रोध किया जाय, तो वह बन्धनका कारण है, यदि वही क्रोध भगवान्‌के साथ किया जाय, तो बन्धन मुक्तिका हेतु हो जाता है।

सूतजी कहते हैं—“ मुनियो ! जब श्रीकृष्णकी आज्ञासे व्रजवासी गोपोंने इन्द्रकी वार्षिकी पूजा न करके गोवर्धनकी पूजाकी, तो इसबातसे इन्द्र अत्यंत कुपित हुआ। किन्तु जिनके रक्षक नंदनन्दन हैं, जिनके सुख दुखका भार विश्वम्भरने वहन कर रखा है, उनका कोई अनिष्ट ही क्या कर सकता है।

इन्द्रको बड़ा अभिमान हो गया था, वह अपने को ही सबसे श्रेष्ठ ईश्वर समझता था । वह सोचता था, मैं तीनों लोकोंका स्वामी हूँ मेरे समान और कौन है। उसने सोचा—“ये गोप मेरे प्रभावको भूलगये हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि गत वर्षोंसे मैंने समय पर यथेष्ट वर्षा की है। जिससे व्रजवनमें बहुत घास हो गयी। गोपोंकी गायें बढ़गयी हैं, मोटी हो गयी हैं, अधिक दूध देने लगी हैं। अधिक व्यापार होनेसे गोप धनी हो गये हैं। धन बढ़नेसे मद बढ़ गया है। मुटाई छागई है। प्रभुता पाकर सभी को मदहो

आता है। इन गाँवके गँवार गोपोंकी मूर्खता तो देखो एक छोटेसे बालक कृष्णकी बात मानकर मुझ इतने बड़े देवताका अपमान कर डाला। इसलिये मैं इन सबके मदको चूर करूँगा। इन्हें इनके कियेका फल चखाऊँगा।

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! मेघोंके गण होते हैं। जो समय समय पर इन्द्रकी प्रेरणासे वर्षा किया करते हैं। उन गणोंमें एक सांवर्तक नामक गण है। ये सदा बद्ध रहते हैं। जब प्रलयका समय आता है, तब ये खोले जाते हैं। प्रलयके समय बहुत काल तक तो वर्षा ही नहीं होती, प्रलय कालीन प्रचंड सूर्य तपते हैं जिनके तापसे सब चराचर जीव नष्ट हो जाते हैं, फिर हाथीकी सूँडकी धारके समान सांवर्तक नामक मेघ वर्षा करते हैं, जिससे सातों समुद्र एक हो जाते हैं। पृथिवी जलमयी बन जाती है। सांवर्तक मेघ बीचमें कभी नहीं खोले जाते, किन्तु आज तो इन्द्र क्रोधके कारण आवेसे बाहर हो रहे थे। इन्होंने सांवर्तक मेघोंको बुलाकर कहा—देखो, तुमलोग जाओ गिरिराज गोवर्धन पर्वत पर इतनी वर्षा करो कि उसे जलमें डुबा दो। नन्दका जितना व्रज है, सबका नाश कर दो। वहाँके गोपोंकी एक भी गौ न बचने पावे न कोई गोप ही। सबका सर्वनाश कर दो। जहाँ नन्दादि-गोपोंने डेरेडाल रखे हैं, उसे जलमय बनादो।"

सांवर्तक मेघोंने कहा—प्रभो! हमतो प्रलयकालके समय खोले जाते हैं। सब इन्द्र हमें खोलते भी नहीं कल्पके अन्तके जो चौदहवें इन्द्र होते हैं, वे ही हमें आज्ञा देते हैं, तब हम प्रलय करते हैं।"

इन्द्रने कहा—"तुमलोग हो तो मेरे ही अधीन। बीचमें भी काम पड़ने पर तुम्हारा उपयोग किया जा सकता है। इस समय ऐसाही अवसर आगया है।"

मेघोंने पूछा—' ऐसी क्या बात हुई ?" यह सुनकर इन्द्र बोला—"क्या हुई ! ये गोप एकतो वैसे ही मूर्ख हैं, फिर इनमें एक बालक व्रजवासियोंमें उत्पन्न हो गया है। वह छोकरा कुछ पढ़ा लिखा तो है नहीं परन्तु अपने को लगाता बहुत बड़ा है. अभिमानका तो मानों वह पुञ्ज ही है। इतना ही नहीं वह अपनेको बड़ा बुद्धिमान समझता है। उस छोकरेने गोपोंको बहका दिया है, कि तुम इन्द्रकी पूजा मत करो। बताओ अब ये गोप जीवित रह सकेंगे। मर्त्यधर्मा कृष्णकी बात मानकर मुझ अमराधिपका इन लोगोंने अपमान किया है।"

संवर्तक मेघ ने पूछा—"श्रीकृष्णने कुछ समझकर ही तो आपकी पूजा बन्द की होगी ?"

इन्द्रने क्रोधमें भरकर कहा—"अरे, उसमें कुछ समझने सोचने की शक्ति होती, तो ऐसा अनर्थ करता ही क्यों ? वह मर्त्यलोकका रहने वाला मुझ स्वर्गाधिपको कुछ समझता ही नहीं। गोप भी उसके एक दो छोटे मोटे चमत्कारों को देखकर उसके प्रभावमें आ गये हैं। गोप भी समझने लगे हैं, कि जब हमारे रक्षक श्री कृष्ण हैं, तो इन्द्र हमारा क्या करेंगे। यह तो वही बात हुई कि मेढ़क चूहेके बलपर सर्पका अपमान करे। जैसे कोई मूढ़ नौकाके बिना केवल कुत्तेकी पूंछ पकड़कर समुद्रको पार करना चाहता हो, जैसे कोई मन्दमति पुरुष ब्रह्मविद्या को छोड़कर अनन्त नाम मात्रकी अदृढ़ नौका रूप कर्ममय यज्ञोंसे इस भवसागरको पार करना चाहता हो, उसी प्रकार कृष्णका आश्रय लेकर ये सब गोप अपनेको सुरक्षित मानते हैं। मैं इन्हें इनकी करनीका फल चखाऊँगा। इनसे अपने अपमानका बदला लूँगा। तुमलोग निःशङ्क होकर जाओ और इन कृष्णके द्वारा अभिमान बढ़ाये हुए धनोन्मत्त ग्वालोंके ऐश्वर्य मदको धूलमें

मिटादो। इन सब के पशुओंका संहार करदो।"

सांवर्तक मेघोंने कहा—"तो प्रभो ! हम अकेले तो वहाँ जायँगे नहीं, एक तो हम श्रीकृष्णके प्रभाव को जानते नहीं, दूसरे आप हमें असमयमें भेज रहे हैं। अतः आप भी हमारे साथ चलें।"

इन्द्रने कहा—"तबतक तुम चलो, मैं तुम्हारे पीछे पीछे ऐरावत हाथी पर चढ़कर उनंचास मरुद्गणों को साथ लेकर आता हूँ, तुम वर्षा करना मरुद्गण तीव्रवायु चलावेंगे' ब्रजका सब विध्वंस हो जायगा।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! मेघगण तो इन्द्रके अधिकारमें ही होते हैं। जब इन्द्र ही उन्हें ऐसा अनर्थ करनेके लिये प्रेरित कर रहे हैं, तो फिर वे क्या करते। अब तक तो वे प्रलय कालके लिये एक स्थानमें बन्द थे। जब इन्द्रने स्वयं ही चाभी लेकर ताला खोल दिया, तो वे सब बन्धनमुक्त हो गये और ब्रजपर जाकर मूसलाधार पानीकी वर्षा करने लगे। उनकी धारायें हाथोंकी सूँड़के समान तथा खम्भोंके समान मोटी थीं। मेघोंकी गड़ गड़ाहट, बिजली की तड़ तड़ानसे ब्रजवासी अत्यंत भयभीत हो रहे थे। वर्षा निरन्तर हो रही थी। प्रचण्ड पवनसे प्रेरित-होकर मेघ जलके सहित बड़े ओलोंकी भी वर्षा करने लगे। निरन्तरकी वृष्टिसे समस्त सम विषम भूमि एक-सी हो गयी।

य जलसे भर गयी, जिधर दृष्टि दौड़ाओ उधर जल ही ल दिखायी देता था। यह देखकर गोप ग्वाल परमविस्मित हुए।

छप्पय

फरयो इन्द्र अति कोप भयङ्कर मेघ बुलाये।
करिबेवारे प्रलय मेघ सांवर्तक आये॥
बोले तिनतैं शक्र-शीघ्र तुम व्रजमहँ जाओ।
गोपनिको धन धान धेनु सर्वस्व डुबाओ।
गरजत तरजत घन चले, प्रलय सरिस वर्षा करैं।
प्रेरित पवन प्रचण्ड हिम, नर, पशु पक्षिनिपै परैं॥

—:⊛:—

तस्मान्मच्छरणं गोष्ठं मन्नाथं मत्परिग्रहम्।
गोपाये स्वात्मयोगेन सोऽयं मे व्रत आहितः॥
इत्युक्त्वैकेन हस्तेन कृत्वा गोवर्धनाचलम्।
दधार लीलया कृष्णश्छत्राकमिव बालकः॥ *

श्रभा० १० स्क० २५ अ० १८, १९ श्लो०

छप्पय

थर थर काँपें गाय हाय सब लोग पुकारें।
ठिठुरत इत उत फिरत कहत—हरि हमें उबारें॥
अनत शरन नहिं लखी शरन सब हरिकी आये।
शरनागतके निकट दीन है वचन सुनाये॥
भक्तवत्सल भगवान् है, हरि हम सबके दुख हरो।
कुपित इन्द्रके कोप तैं, प्रणतपाल रक्षा करो॥

जीव भगवत् शरणमें जानेसे डरता है, अपना सर्वस्व सौंपनेमें हिचकता है, तनिकसी विपत्ति आनेसे ही घबरा जाता है। समर्पणमें सन्देह करने लगता है। जो सर्वात्मभावसे

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी इन्द्रके कुपित होकर वर्षा करने पर सोच रहे हैं—'इसलिये जिनका मैं ही एक मात्र आश्रय और रक्षक हूँ, उन उन शरणागत व्रजवासियोंकी मैं अपनी योग सामर्थ्यसे रक्षा करूँगा, यही मेरा धारण किया हुआ व्रत है। ऐसा

समर्पण कर देते हैं, भगवान् उनके सुख दुखकी चिन्ता स्वयं करते हैं। जीव अविश्वास न करे, कि मुझे तो लाख रुपयेका काम है यहाँ तो एक पैसा भी नहीं कैसे काम चलेगा यदि तुमने सर्वात्मभावसे अपनेको भगवान् पर छोड़ दिया है, तो बस लक्ष्मीपतिके लिये लाख करोड़ क्या बात है। जो वसुन्धराके स्वामी हैं, वे चाहे जहाँसे वसु-धन-दे सकते हैं। उनकी तो दृष्टिमें सृष्टि है। उनके लिये कहीं भी कमी भी कुछ भी असंभव नहीं। उनके लिए सब संभव है। वे जड़को चैतन्य और चैतन्यको जड़ कर सकते हैं। अचर को चर और चरको अचर कर सकते हैं। माया जिनके आगे असंभव कुछ भी नहीं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! गोवर्धन पर्वतकी तलहटीमें ठहरे हुए गोपोंके ऊपर सांवर्तक नामक मेघोंने आकर मूसला धार वृष्टि आरम्भ कर दी। सब सुखपूर्वक सो रहे थे, आनन्द विहार कर रहे थे प्रसन्नता कीड़ायें कर रहे थे। बाल बच्चों तथा स्त्रियोंके साथ हँसी विनोदकी बातें कर रहे थे, उसी समय बड़े वेगसे वर्षा होने लगी। पहिले तो उन्होंने समझा—" साधारण जल है, निकल जायगा किन्तु जब देखा बड़ी बड़ी मोटी धारें निरन्तर बह रहा हैं। प्रतीत ऐसा होता है। आकाशमें बड़े बड़े छेद हो गये हैं जिनमें आकाशगंगा फूट पड़ी है।

कुछ ही कालमें वर्षासे तथा साथही प्रचण्ड प्रचण्ड पवनके भयंकर झोंकोंसे गोप गोपी ग्वाल, बाल तथा गायें काँपने लगीं। गोपियाँ अपने बच्चोंको गोदमें छिपा कर रोने लगीं। धारा वाहिक वृष्टिसे व्याकुल हुई गए अपने बच्चोंको अपने अंगोंमें

सींचकर भगवानने लीलासे ही अपने एक ही हाथसे गोवर्धन पर्वतको उखाड़ कर इस प्रकार उठा लिया, जिसप्रकार बालक छत्राक पुष्पको उठाले।"

सटाने लगीं। सिरको मोड़े हुए काँपती हुई वे ऐसी लगती थीं मानो वे सिकुड़ कर अपने अङ्गोंमें घुस जाना चाहती हों। तलहटीमें चारों ओर जल भर गया था। छकड़ोंके ऊपर तक जल आ रहा था, गौओंके छोटे छोटे बच्चे जलके प्रवाहमें बहने लगे। बछड़ोंका मुख शीत और भयके कारण दयनीय हो रहा था। वायुके वेगसे वे केले के पत्तोंके सदृश थर थर काँप रहे थे।

गोपियाँ आपसमें कहने लगीं—"हाय! यह सब इन्द्रके यज्ञ न करने का फल है। हमने इस वर्ष इन्द्रकी पूजा नहींकी इसीसे कुपित हो कर वे वर्षा कर रहे हैं अवश्यही वे हमारा सर्वनाश कर देंगे। हाय! गोपोंने इन्द्रका यज्ञ छोड़ कर गोवर्धनका पूजन क्यों किया। खानेके लिये तो गोवर्धन देवताने ऐसा विकट वेष बना लिया था, अब रक्षा करने क्यों नहीं आता। जिसका देव है उसी की बात मानेगा, कृष्णके समीप चलें यह कह कर सब गोपियाँ रोती हुईं श्रीकृष्णके छकड़ेके समीप आईं। गोप भी भयभीत होकर श्रीहरिकी शरण गये। गौओंने भी डकराते हुए चारों ओरसे श्रीकृष्ण को घेर लिया। सभी एक स्वरमें कहने लगे—"हे व्रजचन्द्र! हे नन्दनन्दन! हे प्रणतदुःख भंजन! हे भक्तवत्सल! हे गोकुलेश! हे व्रजके एक मात्र जीवनधन श्याम सुन्दर! हमारी इस विपत्तिसे रक्षा करो, रक्षा करो। हम तुम्हारी शरण हैं।"

गोप गोपी ग्वाल बाल तथा गौओंको प्रचण्ड वायु ओलोंके सहित घनघोर वर्षाके कारण पीड़ित और अचेत देखकर भगवान सब कुछ समझ गये, कि यह सब इन्द्रका करतूत है। उसीने कुपित होकर यह कृत्य किया है। इस समय वर्षाका तो कोई काल नहीं है। इसे अपने इन्द्रपनेका बड़ा अभिमान है। मैं इसके अभिमानको मेटूँगा।"

इधर भगवान् तो यह सोच रहे थे, उधर नदजीकी दशा निचित्र थी, वे सोच रहे थे—"हमने इन्द्रकी पूजा न करके पने आप यह विपत्ति मोल लेली। इन्द्रकी भी पूजा करलेते। वर्धनको भी पूजलेते। वे हाथ जोड़कर प्रार्थना कर रहे थे— हे पति! आप हमारे अपराधको क्षमा करें। हमें डुबानेका चार छोड़ दें।"

इसपर भगवान्ने कहा— पिताजी ! आप यह क्या कर हैं। आप अपने इष्ट देव गोवर्धनसे प्रार्थना क्यों नहीं करते, आपके सब कष्टको दूर करेंगे।'

नंदजीने कहा—"अरे, भैया ! गोवर्धन तो हमारी सुनते ही ीं, उनके सामने ही तो यह सब कुछ हो रहा है।"

भगवानने कहा— मुझे गोवर्धननाथने स्वप्नमें बताया था, वर्षा हो तो तुम मुझे उठाकर मेरा छतरी बना लेना। मेरे नीचे । गौओं और ग्वालों को बिठा देना।"

नंदजी बोले—"अरे भैया ! सात कोश लम्बा पहाड़ कैसे सकता है। यह बात तो असम्भव सा है।"

श्रकृष्णचन्द्रजीने कहा— पिताजी ! जो देवता इतना तन करलेता है, उसके लिए असंभव क्या है?"

नंदजीने कहा— अरे, भैया ! जलसे और अग्निसे किसीका । नहीं चलता।"

यह सुनकर भगवान् हँस पड़े। उन्होंने सोचा—"मैं अपनी मायासे असम्भवको भी संभव कर दिखाऊँगा। इन्द्रके गर्वको गा। अज्ञान वश यह इन्द्र अपनेको सब लोकपालोंसे ड़े समझता है नियमानुसार सत्वगुणकी प्रधानता होनेसे ताओं को अभिमान न होना चाहिये किन्तु अज्ञान वश । मद हो गया है। इन्द्र मेरे ऐश्वर्यको भूल गया है । मान भंग होने पर भी उसका कल्याण ही होगा

सब सोचकर भगवान्ने अपने याग स्म बसे गोवधन पर्वतको छूआ। छूते ही सात कोश लम्बा पर्वत पृथिवी से उछलकर ऊपर उठगया। भगवानने अपने बायें हाथकी उँगलीपर उस पूरे पर्वतको धारण कर लिया। उसके नीचे सात कोश लम्बी चौडी सुन्दर सी समान गुफा बनगयी। तब भगवान् बोले—"तुम सब अपनी अपनी गौओंको, गृहस्थीको तथा बाल बच्चों [illegible] लकड़ों को लेकर इस पर्वतके नीचे आ जाओ। [illegible] भय

को रोके हुए था. किन्तु चारों ओर तो वर्षाके कारण जल भर ही गया होगा. वह तो नीचे आ गया होगा।"

सूतजी बोले—"महाराज! भगवान्ने जलको पृथिवी पर आने ही नहीं दिया। जाज्वल्यमान सुदर्शन चक्रको उन्होंने आज्ञा दी, वह पहाड़के ऊपर बैठगया। जैसे अग्निसे लाल हुए तवे पर बिन्दु बिन्दु जल डालो तो वह तुरंत जल जाता है, जैसे वडवानल समुद्रके जलको शोष लेता है, वैसे ही वर्षाके समस्त जलको सुदर्शन चक्र बीचमें ही जला देता था। इस प्रकार सात दिनों तक निरंतर वर्षा होती रही। भगवान्की योग मायाके प्रभावसे किसीको यह समय मालूम ही नहीं हुआ। सब बड़े आनंदसे हँसते खेलते आनंद करते रहे। खीर उड़ाते रहे। यशोदा मैया, जो बड़ी चिन्तित थीं, वह बार बार श्याम सुन्दर के हाथमें मक्खन मलतीं और पूछतीं—"बेटा! हाथ दुखने तो नहीं लगा।" श्रीकृष्णचन्द्र हँस जाते और कहते—"मैया! तैंने जो मुझे इतना माखन खिलाया है उसका कुछ भी तो बल होना चाहिये। और सब गोप तो उठते बैठते तथा सोते लेटते भी थे. किन्तु श्रीकृष्ण खड़े ही रहे और उनके सामने उनकी आँखोंमें आँखें मिलाये गोपराज वृषभानु की एक छोटी-सी गोरी-सी छोरी भी खड़ी थी। वह भी सात दिन नहीं बैठी। जब कोई उससे बैठने को कहता, तो वह कह देती—"स्वप्नमें गोवर्धननाथ ने मुझसे कहा है, श्यामसुन्दरके साथ तू भी खड़ी रहना. तू न खड़ी होगी तो कभी श्याम सुन्दरके हाथसे पर्वत गिर जायगा, सब लोग दब जायँगे, बड़ा अनर्थ होगा।" इसी लिए मैं सबकी भलाईके लिये खड़ी हूँ। यह सुनकर सब लोग कहते—इस छोरी छोराकी जोरी तो बड़ी सुन्दर है। अवश्य ही इस छोरीमें कोई चमत्कार है, तभी तो श्नुआ पलक नहीं मारता। भूला सा भटका-सा एकटक इसीकी ओर देखता हुआ खड़ा है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! गोपोंको तो भगवान्के वचनों पर पूर्ण विश्वास था, अतः भगवान्के यह आश्वासन देनेपर कि तुम किसी बातका न भय करो न पर्वत।गिरनेकी आशंका करो।' मैं सबकी रक्षा करूँगा।" वे सबके सब अपने छकड़ों, गौओं, तथा भृत्य, पुरोहित और परिवारके लोगोंके साथ आनंदके साथ सात दिनों तक पर्वतके नीचे बैठे रहे। इतने समय तक अपनी योगमायाके प्रभावसे भगवान् एक ही स्थानपर खड़े रहे। तनिक भी इधर उधर विचलित नहीं हुए।

छप्पय

सुरपतिकी करतूत समुझि हरि मन मुसकाये।
कछु चिन्ता मत करो सबनिकूँ वचन सुनाये॥
करपै गिरिवर धरयो फूल सम ताहि उठायो।
चक्र सुदर्शन जल सोखन हित शैल बिठायो॥
मैया कर माखन मले, लकुट लगावें गोप गन।
सात दिवस गिरि कर धरयो, भयो न नेंकहु मलिन मन॥

—※—

इन्द्रका अभिमान चूर हुआ

(९५२)

कृष्णयोगानुभावं त निशाम्येन्द्रोऽतिविस्मितः ।
निःस्तम्भो भ्रष्टसङ्कल्पः स्वान्मेघान्संन्यवारयत् ॥*

(श्रीभा० १० स्क० २५ अ० २४ श्लो०)

छप्पय

प्रलयकालके मेघ शक्तिभर पूरे बरसे ।
नीचे गिरिके गोप गाय सब सुखतें निवसे ॥
जलतें खाली भये गये सुरपतिके पाहीं ।
बोले—बरषा करी नन्दव्रज डूबत नहीं ॥

मद सब उतर्‌यो इन्द्रको, सुनत चकित—सो रहि गयो ।
रोके घन सब व्रज चलो, गिरिधर गोपनितें कह्यो ॥

जब तक जीवको अपने बल, पुरुषार्थका अभिमान है, तब तक वह अपनी अल्प शक्तिके मदमें मग्न है, तब तक वह सर्वशक्तिमान्‌की शरणमें नहीं जाता । जब अपनी सब शक्तिको

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं— राजन् ! श्रीकृष्णचन्द्रजीकी ऐसी सामर्थ्यको अवलोकन करके इन्द्रको परम विस्मय हुआ । वह गर्वशून्य बन गया । उसने अपने मेघोंको वर्षा करनेसे निवारण कर दिया ।"

सम्पूर्ण बल पुरुषार्थको लगाकर भी अपने संकल्पको पूरा नहीं कर सकता, व उसका मद उतर जाता है। तब उसे अनुभव होता है, कि मुझसे भी बड़ी कोई शक्ति है। अपने पुरुषार्थसे जीव जब तक हार नहीं मानता तब तक वह हरिकी शरण नहीं जाता; अतः परमात्मा द्वारा पुनः पुनः पुरुषार्थका विफल होना, यह उनकी कृपा है, अनुग्रह है, परम दया है। भगवान जिसे अपनाना चाहते हैं, उसके बल पुरुषार्थ, तप, प्रभाव, धन तथा अन्यान्य मदोंको चकनाचूर कर डालते हैं। आँखोंमें पड़े अभिमान रूपी जालेको वे मानभङ्ग रूप शस्त्रसे काटकर ज्ञान रूप आलोक प्रदान करते हैं। उनकी प्रत्येक चेष्टामें जीवका कल्याण निहित है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! अमराधिप इन्द्रने प्रथम सांवर्तक मेघोंको भेजा, पुनः उनंचास मरुद्गणोंके सहित ऐरावतपर चढ़कर वह स्वयं आया। वह खड़ा खड़ा देखता रहा कब गोवर्धन पर्वतके सहित ये सभी गोप डूबते हैं, किन्तु सात दिनों तक निरंतर ओलों सहित वर्षा होनेपर भी एक बूँद पानी भी गोप के पास नहीं गया। वे आनन्द पूर्वक सुख-से बैठे रहे, अपने नित्यके कार्य करते रहे। मदके कारण वह तो अंधा हो रहा था। अभिमानके वशीभूत होकर जब कोई व्यक्ति अपनी मिथ्या हठपर अड़ जाता है, तो उसका सब विवेक विलीन हो जाता है, वह सभी उचित अनुचित उपायोंसे अपने हठको पूरा करना चाहता है। इन्द्रने सोचा—"यदि वर्षाके कारण गोपवंश नष्ट नहीं होता, तो मैं अपने अमोघ वज्र द्वारा इन सबको नष्ट कर डालूँ। मेरा वज्र महातपस्वी दधीचि की योगतपोमय अस्थियोंसे निर्मित है। यह कभी व्यर्थ हो सकता नहीं। इन नन्दादि गोपोंको इनके अभिमानका फल तो चखाना ही चाहिये।" यही सब सोचकर उसने

अपना अमोघ अस्त्र गोवर्धनके ऊपर चलानेको ज्यों ही उठाया, त्यों ही उसका हाथ स्तम्भित रह गया। उसका संकल्प नष्ट हो गया। सम्पूर्ण शक्ति नष्ट हो जानेसे उसका इन्द्रपनेका अभिमान दूर हो गया। तुरन्त उसने मेघोंको वर्षा करनेसे रोक दिया और मन ही मन श्रद्धा भक्ति सहित गुरुप्रदत्त श्रीकृष्णमंत्रका जाप करने लगा। मन ही मन वह समाहित चित्तसे श्रीकृष्णकी शरणमें गया। निर्व्यलीक-निरभिमान-होकर जब वह प्रपन्न हुआ, भगवानकी शरण गया तब उसे तन्द्रा-सी आगयी। उसे तन्द्रावस्थामें यह सम्पूर्ण विश्व कृष्णमय दिखायी दिया। उसे चराचर विश्वमें बाँसुरी बजाते वनमाला धारण किये मोरके पङ्खोंका मुकुट पहिने हुए द्विभुज श्रीकृष्ण ही श्रीकृष्ण दिखायी दिये। वे अपनी शक्तिके सहित नाना प्रकारकी कमनीय क्रीड़ाएँ कर रहे हैं। अब उसे चेत हुआ। वह समझ गया, मैंने मूर्खतावश निखिल-कोटिब्रह्माण्डाधिनायक श्रीनन्दनन्दनका अपमान किया है। वे ईश्वरोंके भी ईश्वर हैं। इसी भावनासे वह मनसे पुनः पुनः प्रभुके पदपद्मोंमें प्रणाम करने लगा। प्रपन्न समझकर भगवान्ने तुरन्त उसे अभय कर दिया। उसका स्तम्भित हुआ हाथ स्वच्छ हो गया, मेघ और मरुद्गणोंके साथ वह लज्जित होकर स्वर्गको चला गया। मेघोंके हट जानेसे आकाश स्वच्छ हो गया। वायु शान्त हो गयी। सूर्यदेव चमकने लगे। धूप होनेसे जाड़ा भी जाता रहा। बड़ा ही सुहावना समय हो गया। उस समय गोवर्धनको धारण किये ही क्ये नन्दनन्दन नन्दादि समस्त गोपोंसे बोले— आप लोगोंकी पूजासे प्रसन्न होकर गोवर्धनने कैसी कृपा की। इतनी वर्षा होनेपर भी एक बूँद जल हमारे समीप नहीं आया। अब तो वर्षा भी निकल गयी, सूर्य भी उदय हो गये। अब किसी प्रकारका भय नहीं रहा।

तुम सब निर्भय होकर अपने स्त्री, बाल बच्चे गोधन तथा अन्यान्य धनोंके सहित छकडोंको लेकर पर्वतके नीचेसे निकलकर बाहर होजाओ। अब गिरिराज गोवर्धन लेटना चाहते हैं उन्हें भी कुछ कुछ निद्रा-सी आने लगी है।"

यह सुनकर घबडाकर गोप कहने लगे—"अरे भैया! अभीसे गोवर्धनको निद्रा आगयी, तो हम सब तो चकनाचूर हो जायँगे। अभी हाथको ढीला मत करना। डाँटे रहना। ऐसा न हो गोवर्धनके सोते ही हम सब भी इसके नीचे सदाके लिये सोने रह जायँ। यद्यपि अब वर्षा नहीं हो रही है, फिर भी नद नदियोंका जल तो अभी उमड ही रहा है।"

भगवान् बोले—"अजी, नहीं, जब तक तुम सब निकलकर बाहर न होगे, तब तक मैं हाथ ढीला नहीं कर सकूंगा। अब बाहर कोई भयकी बात नहीं। धूप होनेसे भूमि भी सूख गयी, अब तक जो प्रचण्ड वायु बह रही थी, वह भी शांत हो गयी, नदियोंका जल भी उतर ही गया है। अब सब बाहर हो जाओ।"

भगवानकी आज्ञा पाकर समस्त गोपगण अपने अपने छकडोंपर सब सामान लादकर स्त्री, बच्चे तथा गौओंको साथ लेकर पर्वतके नीचेसे निकले। भगवान् वहींसे खड़े खड़े पूछते थे—"कहो, भाई! किसीकी कोई वस्तु छूटी तो नहीं है? छूटी हो तो फिर ले जाओ। यदि गोवर्धन लेट गये, तो फिर वह वस्तु यहाँकी यहीं रह जायगी।"

यह सुनकर लड़के चिल्लाते—"मेरी गेंद रह गयी है, कनुआ भैया! उसे और निकाल लेना।" बुढ़िया चिल्लातीं—"बेटा! मेरी लाठी छुट गयी है।" गोपियाँ चिल्लातीं—"लालजी! हमारी सुई डोरा तथा कपडोंकी डोलची छूट गयी है, उन्हें भी लेते आना।" कोई कहता—"कनुआ भैया! तेरी मुरली है या नहीं देख लेना।"

भगवान् बोले—" मेरी मुरलीकी तो तुम चिन्ता करो मत। यह तो मेरी फेंटमें खुरसी हुई है, अब मेरे हाथ तो घिर रहे हैं, जिसकी जो वस्तु छूटी हो उसे आकर लेजाओ।"

यह सुनकर सब आकर पुनः अपनी अपनी वस्तुओंको ले गये। लाठियाँ लेकर गोप आये और बोले—"कनुआ-मैया! कैसे रखेगा, अब तू इसे। एक साथ रखनेसे तो तू बीचमें ही रह जायगा।"

हँसकर भगवान् बोले—'तुम मेरी चिन्ता मत करो। गोवर्धननाथने मुझे सब उपाय बता दिये हैं। तुम सब बाहर निकल चलो।"

गोपोंने कहा—' मैया, हम तो तुझे छोड़कर जायँगे नहीं। हम तेरे पीछे पीछे चलेंगे।"

प्रेममें सने उनके वचन सुनकर आनन्दकन्द श्रीकृष्ण-चन्द्र हँसकर बोले—" अच्छी बात है, चलो मैं भी चलता हूँ।" यह कहकर वे आगे बढ़े और बाहर आकर सब गोपोंको उसके नीचेसे निकालकर समस्त प्राणियोंके देखते देखते उस सात कोशके पर्वतको लीलासे ही पूर्ववत् उसके प्राचीन स्थानपर रख दिया।

बाहर निकलकर सबको अत्यन्त प्रसन्नता हुई। श्रीकृष्णके ऊपर वैसे ही समस्त व्रजवासियोंका अत्यन्त प्रेम था, किन्तु आज तो वह प्रेम अनन्तगुणा बढ़ गया। सबके हृदयमें प्रेमकी हिलोरें मारने लगीं। प्रेम जब उमड़ता है, तो आदमीसे रहा नहीं जाता। सम्मुख अपने प्रेमास्पदको देखकर चित्त विवश हो जाता है, उसे छातीसे चिपटा लें हृदयसे हृदय सटाकर मिललें। गोपोंने श्रीकृष्णका बार बार आलिंगन किया। माताओंने बार बार उनके मुखको चूमा। लजाती हुई गोपिकाओं ने श्यामसुन्दरके मस्तकपर दधि अक्षत और कुङ्कुमके तिलक लगाये।

मस्त होकर गिरिधारीके गुणोंका गान कर रहे थे। कुछ सुर गण अपनी अपनी झोलियोंमें भरभरकर नन्दनकाननके नाना कमनीय कुसुमोंकी विमानोंसे वर्षा कर रहे थे। ढोल, भेरी तथा दुन्दुभी आदि वाद्योंकी तुमुल ध्वनिसे दशों दिशाएँ मुखरित-सी प्रतीत होती थीं। अप्सरागण नृत्य करने लगीं और तुम्बुरु सुदर्शन, चित्ररथादि अनेकों मुख्य मुख्य गन्धर्व गान करने लगे। सारांश यह कि भूतलमें सुरलोकमें तथा स्वर्गादि लोकोंमें इस अद्भुत घटनासे अपूर्व आनन्द छा गया।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार इन्द्रके कोपसे अपने अनुरक्त भक्त अनन्य प्रेमी गोपोंकी सकुटुम्ब श्यामसुन्दरने रक्षा की। इन्द्रका मद चूर्ण किया, गोवर्धनकी महिमा बढ़ायी और अपनी अद्भुत शक्तिका भी परिचय दिया गोपगण। प्रसन्नतासे विभोर हुए गोप ग्वाल श्यामसुन्दरको घेरकर उनकी चारों ओर नाचते गाते चले। ऊँचे ऊँचे जूड़ोंको रंग बिरंगी ओढ़नियोंसे ढककर, घुमघुमकर लहँगोंको हिलाती हुई नन्दनन्दनकी पूर्वोक्त ललित लीलाओंको गाती हुई गोपियाँ चलीं। इस प्रकार वे सब आनन्द और उल्लासके सहित अपने पुरके विश्राम स्थान व्रजमें पहुँचे।'

छप्पय

कुशल सबनि लखि गोप अधिक हियमहँ हरषावैं।
हरि आलिङ्गन करें प्रेमते उर चिपटावें॥
पूछत गोपी करें कृष्णको कुशल मनावें।
सुरगन सादर सुमन गगनतें बर बरसावें॥
आनँद त्रिभुवनमहँ भयो, सुखी सकल सुर नर भये।
पढ़ि स्वस्ती दै गोप सब, वृन्दावनकूँ चलि दये।

— ● —

श्रीकृष्णके सम्बन्धमें गोपोंकी शङ्का

(९५३)

दुस्त्यजश्चानुरागोऽस्मिन्सर्वेषां नो व्रजौकसाम् ।
नन्द ते तनयेऽस्मासु तस्याप्यौत्पत्तिकः कथम् ॥
क सप्तहायनो बालःक्वमहा द्रिविधारणम् ।
ततो नो जायते शङ्का व्रजनाथ तवात्मजे ॥ *
(श्रीभा० १० स्क० २६ अ० १४ श्लो०)

छप्पय

प्रभु प्रभावतैं परम प्रभावित भये गोप सब।
नँद तनय नहिँ स्याम करें शंका मिलि जुलि सब ॥
कैसे जने सात दिवस गोवर्धन धार्यो।
कैसे कालिय, क्रूर कुंडते मारि निकार्यो ॥
जाके सबई काम अति, अद्भुत परम विचित्र हैं।
करे अलौकिक काज नित, मधुरा दिव्य चरित्र हैं ॥

जब इस देशमें जातीय सगठन सुदृढ थे तब यह कहावत प्रसिद्ध था, कि जातिसे और रामसे किसीका वश

---

* श्री शुकदेवजी कहते हैं—'राजन्! गोवर्धन धारणके अनन्तर सब गोपोंने श्री कृष्णकी पुरानी लीलाओंको स्मरण करके उनके प्रभावको बताते हुए अन्तमें कहा—"नन्दजी! तुम्हारे इस लाल में हमारा अनुराग भी दुस्त्यज है। और इसका भी हमारे सहज स्नेह है। बताइ इसका क्या कारण है। फिर आप ही सोचें—,कहाँ सातवर्षका यह बालक और कहाँ महान् गिरिराज गोवर्धन को धारण करना, इन्हीं सब कारणोंसे हे व्रजराज! हमें तुम्हारे बच्चेके विषयमें सन्देह होता है।

नहीं चलता। जातिमें कोई छोटा बड़ा नहीं। जाति भाई सब एकसे हैं। जातिके किसी भाईसे भी अनुचित कार्य हो जाय, तो छोटेसे छोटा जाति भाई उसे दण्ड दे सकता है। पहिले बड़प्पन धनसे विद्या व या प्रभावसे नहीं माना जाता था, कुलीनता शालीनता तथा सदाचार ही बड़े होनेका कारण था। इसीलिये जातिके भयसे कोई अनुचित कार्य नहीं कर सकता था। अपनी जातिमें कोई निर्धन है तो सब मिलकर उसकी सहायता करते उसे भी धनवान बना देते। तब समाज का शासन जातीय पञ्चोंपर ही था। कोई आपसमें मन मुटावकी बात हुई, तो उन्हें नित्य प्रति न्यायालयोंमें नहीं जाना होता था। उचित अनुचित बातें गाँव वालों से-जाति वालोंसे तो छिपती नहीं, वे लोग सब सोच समझकर यही निर्णय कर देते। घरका छोटासे छोटा मामला लेकर बड़ीसे बड़ेतक सबका निर्णय जातीय पञ्चायतोंमें ही होजाता। इस कारण जातिका गौरव बना रहता। उसमें वर्णसंकरता वृत्त संकरता तथा आचार विचार की संकरता न आने पाती। लोग रहन सहनके व्यवहारमें विशुद्ध बने रहते। यही सदाचार पालनका प्रधान भित्ति है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो भगवान् गोवर्धनको धारण किया, इसी लिये उनके गोवर्धनधारी, गिरिधारी गिरवरधारी तथा गोवर्धननाथ आदि नाम प्रसिद्ध हुए। गोवर्धन धारण लीलाके अनन्तर जब गोप व्रजमें आगये तो भी उन्हें वह अलौकिक लीला भूलती नहीं थी। उस समय विपत्तिमें तो ऐसा विशेष ध्यान दिया नहीं, अब जब सब विपत्तियोंसे पार होकर घर आगये, तो वे इसी घटनाके विषयमें सोचने लगे। सबको इसी बातका कुतूहल था, कि श्रीकृष्णकी सात ही वर्षकी तो अवस्था है, इस सात वर्षकी अवस्थामें सात कोश लम्बे पर्वत

को सात दिनों तक एक उँगलीपर धारण किये रहना यह गोप के बालकके लिये संभव नहीं।"

गोपगण श्रीकृष्णके अमित प्रभावसे ना अनभिज्ञ ही थे। वे उनके अपार ऐश्वर्यको तो जानते ही नहीं थे। उनका तो स्नेह माधुर्ययुक्त था। अतः सभीको शंका होने लगी। कि श्रीकृष्णचन्द्र नन्दके पुत्र नहीं हैं। ये हमारी गोप जातिमें एक विलक्षण पुरुष कहींसे आगये हैं।' प्रेममें पग पग पर शंका बनी ही रहती है। कोई प्रभावशाली पुरुष हमसे अत्यधिक प्रेम करे तो हम सोचते हैं—'हमतो इसके योग्य हैं नहीं। ये इतना प्रेम प्रदर्शित करते हैं, तो यथार्थ है या बनावटी।" गोपोंके मनमें यही शंका हुई श्रीकृष्णचन्द्रके कामतो अलौकिक हैं, किन्तु वे हम वनवासी गँवार गोपोंके साथ भाई बन्धुका बर्ताव करते हैं, बराबर का समझकर हमारे हृदयसे सट जाते हैं, स्नेह करते हैं। ये हमारी जातिके ही हैं या हमसे विलक्षण कोई देवता हैं" यह शंका एकके ही मनमें उठी हो, सो बात नहीं सभीके मनमें समान रूपसे ऐसी शंका उठने लगी श्रीकृष्णकी सभी पिछली लीलाओं का स्मरण करने लगे ज्यों ज्यों वे उनकी पिछली लीलाओं को याद करते त्यों त्यों उन्हें और भी शंकायें होतीं।

एकदिन समस्त गोपोंने मिलकर पंचायत की उस पंचायतमें यही प्रश्न प्रधान था, कि श्रीकृष्ण चन्द्र हैं कौन ?" एक बूढ़ेसे गोपने अपनी सफेद पगड़ी को सम्हालते हुए कहा—भैयो ! ये नन्दजी के लाला श्रीकृष्णचन्द्र हम सबमें विलक्षण हैं। बालकपनसे ही इनके समस्त कर्म बड़े विचित्र हैं। इनके ऐसे कर्मोंसे तो ये देवताओं के भवनोंमें रहने योग्य हैं, किन्तु ये हम वनवासियोंके बीचमें सामान्य बालकोंकी भाँति

निवास करते हैं. यह इनके लिये प्रतिकूल बात है। तुम लोगोंने अपनी आँखोंसे प्रत्यक्ष ही देखा। सात कोश लम्बे इतने भारी पर्वतको य सात दिनोंतक उसी प्रकार धारण किये रहे, जिस प्रकार गजराज कमलपुष्पको बिना श्रमके धारण करता है. अथवा बालक जैसे वर्षाकालमें भूमिमें उत्पन्न कुकुरमुत्ताके फूलको छतरीकी भाँति धारण करते हैं. अथवा जैसे सिंह अपनी चीरामें से निकले बबूलेको धारण करता है। सात वर्षका बालक बिना विश्रामके सात दिन तक एक उंगलीपर पर्वतको उठाये रहा, क्या यह कम आश्चर्यकी बात है ?'

इसपर एक अन्य गोपने कहा—'भैया, हम तो आरंभसे ही इस बच्चेमें ऐसी अद्भुत अद्भुत अलौकिक शक्तियोंका दर्शन कर रहे हैं। अब तो यह सात वर्षका हो गया; जब यह बहुत छोटा था, दस दिनका भी नहीं हुआ था। तभी इसने अति विकराल रूप रखनेवाली पिशाचों क्रूरकर्म करनेवाली राक्षसी पूतनाको उसी प्रकार पछाड़ दिया, जिस प्रकार एक सिंहशावक बड़े डील डौलवाली हथिनीको पछाड़ दे। जिस प्रकार मृत्यु बड़ेसे बड़े शरीरको बातकी बातमें निर्जित कर दे उसी प्रकार शैशवावस्थामें नेत्रोंको मूँदे मूँदे ही उस यातुधानीके स्तनोंको पीते पीते उसके प्राणोंको हर लिया। उसके तो मृतक शरीरसे सात कोशके वृक्ष चकनाचूर हो गये थे। कोई साधारण शिशु इतना कठिन कार्य कर सकता है क्या ?"

इसपर दूसरा बोला—"इनकी सब बात सोचो, तो बड़ा विस्मय होता है। जब ये तीन महीने ही के थे तभ पैरके अँगूठेसे इतने भारी छकड़ाको अपने ही ऊपर गिरा लिया

और इनका बाल भी बाँका नहीं हुआ।"

इसपर अन्यने कहा—"छकड़ेकी बात तो उतनी आश्चर्यजनक नहीं भी हो सकती है, किन्तु तृणावर्त जो इन्हें ऊपर उड़ा ले गया था, यह कितनी विलक्षण बात है। तब ये पूरे एक वर्ष के भी नहीं हुए थे, तभी आँगनमेंसे इन्हें भभूड़ेमें बैठा असुर उड़ा ले गया इन्होंने गला घोटकर उसे मार डाला।"

इसपर एक युवक-सा गोप बोल उठा—"अरे, भैया हमें तो वह यमलार्जुनकी घटना अभी तक भूलती नहीं। माताने माखनचोरीके कारण उदरमें रस्सी बाँधकर इसे उलूखलमें बाँध दिया था। उसे ही गाड़ीकी भाँति खींचकर दोनों वृक्षोंके बीचसे निकला, कि अड़ड़धम करके इतने बड़े युगादि पेड़ गिर पड़े। यह कम आश्चर्यकी बात है।"

इसपर एक छोटेसे गोपालने कहा—"अजी, पंचों इसने एक पर्वतके डील डौलवाले, बगुलाकी चोंचको उसी प्रकार फाड़ दिया, जिस प्रकार बच्चे मटरकी फलीको फार देते हैं। ऐसे ही बछड़ेका रूप बनाकर वत्सासुर आया था, उसे पूँछ पकड़कर घुमाकर कैथेके पेड़ोंमें दे मारा। बलरामजीने भी धेनुकासुरके पैरोंका पकड़कर यम सदन पठा दिया। अकेले उसे ही नहीं, उसके भी कुटुम्ब परिवारवालोंको स्वाहा कर दिया। देखो, उस दिन दावानलसे हमें कैसा बचाया।"

यह सुनकर एक युवक-सा गोप बोला—"यह सब तो सत्य ही है, किन्तु हमें तो आश्चर्य उस कालिय नागके फणों पर नृत्य करने पर होता है। बताइये जो कालिय-ह्रदके समीप भी जाता वही मर जाता। रमणक द्वीपसे आये हुए कालिय ने इस वृन्दावनकी भूमिपर अपना उपनिवेश बना लिया, यमुनाजीके जलको ही दूषित नहीं किया। उसने वायुमण्डलको भी विषैला बना दिया था। उस इतने बड़े प्रबल पराक्रमी शत्रुको

इस बालकने हँसते हँसते, अपने वशमें कर लिया। उसके सैकड़ों फणोंपर नटवरने नृत्य दिखाया। उसे बल-पूर्वक कालियदहसे निकालकर कालिन्दीको विषहीन बना दिया। ये सब क्या बातें हैं। कैसे इस बालकमें ऐसी ऐसी अलौकिक बातें आ गयीं ?"

इसपर एक बूढ़े गोप बोले— व्रजराज नंदजीसे ही इन सब बातोंका कारण पूछना चाहिये। हमारे गोप वंशमें आज तक एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं हुआ, जिसने एक भी ऐसा अलौकिक कार्य किया हो। यह तो हमारी जातिके लिये बड़ी विचित्र बातें हैं।"

तब एक बूढ़ेसे पचने पूछा—"नंदजी ! आप सत्य बतावें अब घुमा फिराकर क्या पूछें हमें यह सदेह हो रहा है, कि यह आपका सगा लड़का नहीं। आपने इसका दृष्ठौन भी नहीं किया। नामकरण उत्सवमें जातीय वालोंको भोज भी नहीं दिया। इस बच्चेको आप कहाँसे ले आये हैं? यद्यपि हमें इसके जन्म कर्मोंके विषयमें शंका हो रही है, फिर भी हम इससे घृणा करते हों सा भी बात नहीं। व्रजके नर नारी इसे अपने सगे पुत्रसे भी अधिक प्यार करते हैं। इसके प्रति सबका सहज स्वाभाविक अनुराग है। हम सब व्रजवासियोंकी इच्छा यही बनी रहती है, कि सदा इसके मुखारविन्दको देखते ही रहें। फिर भी हमें इसके विषयमें संदेह है। यह हमारी जातिका बालक नहीं हो सकता। आप इतने दिनों तक इस रहस्यको छिपाये रहे, आज सत्य सत्य बता दीजिये। नहीं आजसे हमारी आपकी रोटी बेटी अलग हो जायगी। हम अपने राजा और बना लेंगे। आपको पंचायतकी जाजिमपर न बैठने देंगे। आप हमारी शंकाका समाधान कीजिये। अपने बच्चेकी

की कथा सुनाइये ।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! जब पचायतमें श्रीनन्दजीके ऊपर यह अभियोग लगाया गया, कि यह बच्चा तुम्हारा नहीं हो सकता, तब तो नन्दजी डर-से गये। उन्होंने अपने मुखपर आये हुए स्वेदको वस्त्रसे पोंछा और खाँस मठारकर कंठको साफ करके पचोंको उत्तर देनके निमित्त प्रस्तुत हुए ।"

छप्पय

दश दिनके नहिँ भये पूतना मारि पछारी।
तृणावर्त अरु शकट, काक, बक हने मुरारी॥
खल अघ, धेनुक, वत्स विविध वेषनितैं आये।
अइ असुरता करी श्याम यम सदन पठाये॥
दामोदर बनि यमज तरु, खैंचि गिराये बालने।
सात दिवस अब खेलमहँ, धर्यो शैल कर लालने॥

—※—

नंदजीके वचनोंसे गोपोंका समाधान

(१५४)

श्रूयतां मे वचो गोपा व्येतु शङ्का च वोऽर्भके ।
एनं कुमारमुद्दिश्य गर्गो मे यदुवाच ह ॥*

(श्रीभा, १० स्क, २६ अ, १५ श्लो,)

छप्पय

पूछेँ मिलि सब गोप नंदतैं को ये गिरिधर ।
कहो सत्य ब्रजराज कौनके सुत ये नटवर ॥
सुनि बोले ब्रजराज सत्य मैं बात बताऊँ ।
मोते ई सुत कृष्ण रहस परि तुम्हें सुनाऊँ ॥
गर्ग प्रथम मोतें कही, अवतारी तेरो तनय ।
गुन सब नारायन सरिस, ह्री श्री, बल तप, नय विनय ॥

किसी शंकासंभव बातको देखकर शंकित होना स्वाभाविक ही है। जीव सर्वज्ञ तो हैं नहीं, वे अनुमानके बलपर ही बहुत-सी बातों-को, स्थिर करते हैं जीवोंकी विषय भोगोंकी ओर स्वाभाविक प्रवृत्ति है। एकान्तमें कोई भाई अपनी सगी युवती बहिनसे हँसकर

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! गोपोंकी शंकापर नंदजीने उनसे कहा—, हे गोपों ! तुम्हें जो इस बालकके विषयमें शंका-

बातें कर रहा हो, तो देखने वालोंकी सर्वप्रथम दृष्टि अवैध सम्बन्धकी ही ओर जायगी। उनमें जो नीच प्रकृतिके खल होंगे वे तो उसी समय निश्चय कर लेंगे कि यह व्यक्ति सदाचारहीन है, उसी समय वे निन्दा करने लगेंगे। खल पुरुष तो तनिक-सा छिद्र पाते ही झूठा अनुमान लगा कर सर्वत्र बुराई करनी आरम्भ कर देते हैं, किन्तु जो गम्भीर पुरुष हैं, धर्मसे भगवान्‌से डरते हैं, वे तो दूसरोंके विषय में शंका होनेपर कोई बात निश्चय नहीं करते, किसीके सामने उसे प्रकट भी नहीं करते। जिसके सम्बन्धमें शंका उत्पन्न हुई है, यदि वह ऐसा ही सामान्य पुरुष है, जिससे अपना कोई सम्बन्ध नहीं तब तो वे उस शंका को पी जाते हैं। सोच लेते हैं, 'कुछ भी हो, हमें इससे क्या प्रयोजन, और यदि शंका अपने किसी घनिष्ट सम्बन्धी आत्मीय पुरुषके सम्बन्धमें हुई है, तो अवसर पाकर प्रेम-पूर्वक उसीपर उसे प्रकट करते हैं। शंकाको प्रकट इसलिये करते हैं, कि शंका बनी रहनेपर पूर्ण प्रेम होता नहीं। यह अत्यत आत्मीयताका चिह्न है। जब उसके द्वारा शंकाका समाधान हो गया, तो फिर सज्जन पुरुषोंको पश्चात्ताप होता है, हाय! इतने पवित्र विशुद्ध बन्धुपर हमने ऐसी व्यर्थका शंका क्यों की? किन्तु शंकाका समाधान होना अच्छा ही है। जब तक चित्तमें तनिक भी शंका बनी रहती है, तब तक हार्दिक प्रेम होता नहीं। स्वार्थी लोगोंकी दूसरी बात है। स्वार्थी तो किसीसे प्रेम कर ही नहीं सकते।

हुई है, इस विषयमें मेरा कथन श्रवण करो। इसे सुनकर तुम्हारी शंका दूर हो सकती है। गर्गजीने इस बच्चेके विषय में जो बातें बताई थीं, उन्हें आप सबको सुनाता हूँ।"

न्हें तो अपने स्वार्थसे प्रायोजन? जब तक जिससे अपना
ार्य निकलता है, वह अच्छा हो बुरा हो अपना स्वार्थ सिद्ध
ाना स्वार्थ न निकला तुम अपने घर हम अपने घर शंका वास्त-
में प्रेममें ही होती है, समाधान होनेपर प्रेम और बढ़ता ही है।'

सूत जी कहते हैं—"मुनियो! जब गोपोंने नंदजीके
ऊपर ही भरी पचायतमें यह शंका प्रकटकी, कि श्री-
कृष्णमें आपके पुत्र प्रतीत नहीं होते. तब नन्दजी-
कह—"पञ्चो! आप मेरी बातपर विश्वास करें. श्रीकृष्ण
रा ही पुत्र है।" इसपर एक अधेड़से बाचाल गोपने कहा-
ज राज! देखिये, अब आप बुरा न मानें। पहिले तो शंका
ना ही बुरी बात है। यदि शंका मनमें हो भी जाय, तो उसे
छिपाना यह महापाप है। हमें जिन जिन कारणोंसे शंका
हुई है, उन्हें बतावें तो आप बुरा तो न मानेंगे?",
नंद जी ने दृढ़ताके स्वरमें कहा—"बुरा माननेकी
कौन सी बात है। मोती का पानी और पेटके भीतर कीबात
का तो निकल जाना ही अच्छा है। भीतर ये वस्तुएँ रहेंगी
तो सड़ेगीं। आप अपनी शङ्काओंको स्पष्ट करें।' उसी गोप
नेकहा—"देखिये हमें इन बातोंसे शंका हुई है। प्राय: पुत्र
माताके या पिताके अनुरूप ही होता है। लड़के प्राय. पिताके
अनुरूप होते हैं लड़कियाँ प्रायः माताके अनुरूप होती हैं।
कभी इसके विपरीत भी हो जाता है। श्रीकृष्णका मुख न
आपसे मिलता है. न नँदरानीके मुखसे मिलता है। आप
का मुख कुछ लम्बा और भारी है. श्री कृष्ण का मुख चन्द्रमाके
सदृश गोल गोल है। वर्ण भी नहीं, मिलता। आप भी गोरे हैं.
नंदरानी जी भी गोरी हैं। फिर आप का यह पुत्र काला कैसे
हुआ। काला भी सामान्य नहीं है। ऐसे काले रंग का व्यक्ति तो

संसारमें हमने देखा ही नहीं। जहाँ अत्यंत हरापन होता है वह काला नीला एक विचित्र-सा रग हो जाता है। जल भरे मेघोंके समान, मयूरके कंठके समान, नीले कमलके समान अलसीके पुष्पके समान, वर्षा कालान सघन दूर्वादलके समान तथा इन्द्रनील मणिके समान इस बालकका विचित्र रंग है। ऋषि मुनि आते हैं, तो इसे वासुदेव कह कर पुकारते हैं। वसुदेवके पुत्रको वासुदेव कहते हैं। इसमें भी सन्देह होता है फिर स्वभाव भी आपका इसका नहीं मिलता। आप भले भले यह महाचपल। आकृति भी नहीं मिलती। आप सरल सीधे हैं। यह तीन स्थानों से टेढ़ा है, दृष्टि भी नहीं मिलती। आपकी चितवन सीधी है, यह जब देखता है टेढ़ी दृष्टिसे देखता है। कम भी नहीं मिलते। आपको तो हमने कभी ढ़ाई मनके नाजको भी उठाते नहीं देखा, किन्तु यह तो सात दिनों तक सात कोश लम्बे पर्वतको एक उगलीपर उठाये रहा। पहिले हमारे व्रजमें कभ भेड़िया भी आ जाता था, तो आप सब गोपोंकी सहायतासे उसे घि [illegible] प्रवने

हैं, यह दूसरी बात है कोई स्वार्थवश प्रकट न करे, किन्तु आपने स्नेहवश ये बातें कह ही दीं, अब इस विषयमें मेरा जो वक्तव्य है उसे सुनिये। जब यह बच्चा पैदा हुआ था तो इसके जन्मके कुछ ही दिनों पश्चात् ज्योतिष शास्त्रके आचार्य, यदुवंशके राज पुरोहित भगवान् गर्ग घूमते फिरते मेरे यहाँ आ गये। मैंने उनसे नामकरण संस्कार करनेको कहा।" इसपर एक वृद्ध गोपने पूछा—"आपने गर्ग मुनिसे नामकरण संस्कार करनेके लिये क्यों कहा? हमारे कुल पुरोहित तो शाण्डिल्य मुनि हैं?'

धैर्यके साथ नंदजीने कहा—"उस समय शाण्डिल्य-मुनि व्रजमें थे नहीं, कहीं बाहर गये हुए थे। सहसा महामुनि गर्ग आ गये। ब्राह्मण तो जन्मसे ही सबके गुरु होते हैं, मैंने सोचा—'इतने भारी विद्वान् त्रिकालदर्शी ज्योतिषाचार्य महामुनि गर्ग स्वतः ही—बिना बुलाये—आ गये हैं, तो इन्हींके द्वारा नाम करण संस्कार क्यों न करालूँ। ये त्रिकालज्ञ हैं। ये जन्मपत्री बनाकर-मुझे बालकका सब सत्य सत्य भविष्य भी बता देंगे। इसलिये मैंने उनसे प्रार्थना की।" उन्होंने कहा-'यदि आप धूम धाम न करें बड़ा भारी उत्सव न करें, तब मैं तुम्हारे बच्चोंका नामकरण कर सकता हूँ।" मैंने सोचा-"धूम धाम महोत्सव तो जब चाहें तब कर सकते हैं। यह तो घरकी बात है। इस अवसरसे लाभ उठाना चाहिये।" यही सोचकर मैंने बिना जाति भोज किये उन महामुनि से नामकरण संस्कार करा लिये। पीछे मैंने तीसरे महीने जन्म-नक्षत्रके दिन उत्सव भी किया था। जातीय भोज भी दिया था, यदि आप उसे न मानें, तो मैं आज फिरसे जातीय भोज देनेको तत्पर हूँ।" इसपर एक वृद्धसे गोप बोले-"हाँ, जी! इसमें कोई बुराईकी बात नहीं, महामुनि गर्गका कौन

कराना उचित ही था। हाँ, आगे कहिये उन्होंने क्या कहा ?"

नंदजी बोले—"हाँ, तो गर्गजीने दोनों बच्चोंका संस्कार किया। फिर वहाँ बैठे बैठे ही उन्होंने दोनोंकी जन्म पत्री बनायी। जन्म पत्री बनाकर उन्होंने इस कृष्णको उद्देश्य करके ये बातें मुझसे कहीं। वे कहने लगे-'नंद! यह तुम्हारा बालक साधारण बालक नहीं है। प्रत्येक युगमें यह प्रकट होता है। सत्ययुगमें यह श्वेतवर्णका होता है, त्रेतायुगमें रक्तवर्णका, द्वापरमें पीतवर्ण का और और द्वापरके अंतमें कलियुगके आदिमें यही कृष्ण वर्णका हो जाता है। यह तुम्हारा पुत्र जीव नहीं ईश्वर है। यह अवतार धारण करता है। प्रत्येक युगमें इसके अवतार होते हैं, पहिले कभी यह वसुदेवका भी पुत्र रहा था, इसीलिये ऋषि महर्षि ज्ञानीमुनि इसे वासुदेव भी कहेंगे। इससे तुम बुरा मत मानना। तुम्हारे इस पुत्रके अनन्त गुण हैं, अनन्त कर्म हैं। उन गुण कर्मोंके अनुसार इसके नाम भी अनन्त हैं, अतः इसे कोई पूतनारि बकासुर संहारि, वनमाली, गिरधरधारी कुंजविहारी, लीलाधारी तथा और भी अनेकों नामोंसे पुकारें तो तुम कुछ और मत समझना इस रहस्यको कुछ कुछ त्रिकालज्ञ होनेसे मैं ही जनता हूँ, अन्य साधारण लोग तो समझ ही नहीं सकते। मैं भी पूर्णरीत्या • समझ सकता। तुम्हारा यह बच्चा बड़े यशस्वी नक्षत्रमें उत्पन्न हुआ है, इसलिये संसारमें इसका बड़ा भारी यश होगा। यह समस्त गौओंको और गोकुलके गोप गोपियोंका सुख देनेवाला होगा। इसके द्वारा तुम सब ब्रजवासी बड़ी बड़ी विपत्तियोंसे बातकी बातमें तर जाओगे।" इसपर एक गोपने कहा—"गर्गजीकी यह भविष्यवाणी तो सोलहू आने सत्य उतरी है। इसके बालकपनसे अब तक जितनी विपत्तियाँ

व्रजपर आयी हैं, यदि उनसे यह रक्षा न करता तो व्रज का तो नाम भी शेष न रहता। हम सब कबके स्वाहा हो जाते।"

नन्दजीने कहा—"गर्गजीने मुझे ये सभी बातें पहिले ही बता दी थीं, उन्होंने यह भी कहा था कि, अबके ही यह दुष्टोंका संहार करे सो बात भी नहीं पूर्वयुगोंमें भी अराजकताके समय, दुष्ट दस्युओंने प्रजाको पीड़ित किया था। तब वे सब इसकी शरण गये। साधुओंको दुखी देखकर इसने उनका पक्ष लिया। इसके द्वारा सबल और सुरक्षित होकर सज्जन पुरुषोंने दुर्जनोंका दमन किया। तुम्हरा यह पुत्र सामान्य नहीं है। इसकी महिमाका तो वर्णन कोई कर ही नहीं सकता। जो इसमे प्रेम करेंगे वे भी जगत् पूज्य बन जायेंगे। सौभाग्यशाली पुरुष ही इससे प्रेम कर सकते हैं। उन्हें कोई दबा नहीं सकता धमका नहीं सकता।" आगे उन्होंने अत्यंत दृढ़ताके साथ कहा था—"नंद ! तुम्हारा यह पुत्र अलौकिक है। गुण, श्री. कीर्ति और प्रभावकी दृष्टिसे यह साक्षात् श्रीमन्नारायणके सदृश है। यह जो भी संभव असभव कर्म करे, उसपर आप लोग आश्चर्य प्रकट न करें। यह सब कुछ करनेमें समर्थ है, इसके लिये संसारमें कुछ भी असंभव नहीं।" सो, पंचो ! यह बात मुझे गर्गजीने पहिले ही बतायी थी। बतायी ही नहीं थी। ये सब बातें इसकी जन्मपत्रीमें लिखकर मुझे वे दे भी गये थे। वे तो यह कहकर अपने घर मथुरामें चले गये और मैं

ब्रजमें ही रह कर उनकी बातोंको सोचता रहा, तभीसे मैं इन अक्लिष्टकर्मा श्रीकृष्णचन्द्रको श्रीमन्नारायणका अंश ही मानता हूँ। आपको विश्वास न हो, तो यह मेरे पास जन्मपत्रा है इसे देखलें। इसपर भी विश्वास न हो आप सोचते हों यह वैसे ही भूठ बोलता है, तो आप सब चल कर गर्ग जीसे पूछलें, कि यह बात सत्य है या नहीं। यदि इसमें एक भी बात मैंने बनावटी कही हो, तो जो चोरको दंड हो, वह मुझे देना।" यहसुन कर समस्त गोप बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने नंदजीको उठकर गलेसे लगाया। और सब एक स्वरसे कहने लगे—" ब्रजराज! हमारी शंका का समाधान पूर्णरीत्या हो गया। आप सत्यवादी हैं। हमारी शंकाके कारण हमसे अप्रसन्न न हों, हमारे ऊपर पहिलेके ही समान कृपा बनाये रखें। हमारा सब विस्मय दूर हो गया। श्रीकृष्णचन्द्र धन्य हैं, जो सदा हमारी बड़ी विपत्तियोंसे रक्षा करते रहते हैं। आप भी संसारमें धन्य हैं जो आपने ऐसा पुत्ररत्न पाया, हम सब भी धन्य हैं, जो ऐसे अवतारी महापुरुके साथ रहनेका हमें सौभाग्य प्राप्त हुआ।"

सूत जी कहते हैं— मुनियो! इस प्रकार जब गोपोंकी शंका का समाधान हो गया, तब समस्त ब्रजवासी परम प्रमुदित हुए। वे भगवानकी भूरि भूरी प्रशंसा करने लगे। भगवान् भी सुख-पूर्वक उसमें रहकर नाना भाँतिकी अनेकों और भी अद्भुत अद्भुत क्रीड़ायें करते हुए ब्रज

वासियोंको सुख देने लगे। अब इन्द्रने आकर जिस प्रकार भगवान्का अभिषेक किया उस कथा प्रसङ्गको मैं आगे सुनाऊँगा. आप दत्तचित्त होकर श्रवण करें।"

छप्पय

करि मोकूँ आदेश गये घर गर्ग महामुनि।
हौं अति विस्मित भयो पुत्रके ग्रहफल शुभ सुनि॥
तबतैं जो चिह करे नाइ होवे नहिं विस्मय।
नारायन सुत समुझि मतन निहरौं हौं निर्भय॥
समाधान सबको भयो, करें प्रशंसा नन्दकी।
जय बोलें मिलिकें सकल, नदनँदन व्रजचन्दकी॥

—६—

इन्द्रकी नन्दनन्दनसे क्षमा याचना

· [९५५]

गोवर्धने धृते शैल आसारादुरक्षिते व्रजे।
गोलोकादाव्रजत्कृष्णं सुरभिः शक्र एव च ॥
(श्री भा० १० स्क० २७ अ० १ श्लो०)

छप्पय

व्रजकी रक्षा करी कृष्णने यश जग छायो।
लज्जित ह्वैकें इन्द्र स्वर्गतैं प्रभुढिंग आयो॥
कामधेनु गोलोक त्यागि सेवामहँ आई।
आइ शक्र अति सकुचि मधुर स्वर विनय सुनाई॥
कर जोरें शतक्रतु कहे! शुद्ध सत्वमय नाथ तुम।
प्रभो! छिमहु अपराध अब, माया मोहित जीव हम॥

सुरासे मदमत्त जब आदमी मत्त हो जाता है, तो फिर उसे कर्तव्याकर्तव्यका ज्ञान नहीं रहता। कौन-सी बात करनी चाहिये कौन-सी न करनी चाहिये इसका विवेक नहीं रहता। इस गुड, जौ, महुए, अंगूर तथा अन्य वस्तुओंकी बनाई मदिराका मद तो एक दो दिनमें उतर जाता है किन्तु

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! जब गोवर्धन पर्वतको धारण करके भगवान् श्रीकृष्णने व्रजकी मूसलाधार वृष्टिसे रक्षा की। तब उनके समीप गोलोकसे सुरभि गौ और अपने लोकसे इन्द्र आये।

कामका मद, मोहका मद तथा ऐश्वर्यादिका मद बहुत दिनोंमें जब भगवान की कृपा करें तब उतरता है। धनके कारण यदि अत्यधिक मद हो जाय, तो उसकी एक मात्र ओषधि है दरिद्रता इसी प्रकार ऐश्वर्यका मद हो जाय, तो वह ऐश्वर्य नाशसे ही शान्त होता है। हम लोगोंका धन नष्ट हो जाता है, ऐश्वर्य कम हो जाता है, तो हम समझते हैं, हम पर बड़ी विपत्ति आ गयी, वास्तवमें यह विपत्ति नहीं भगवान्की बड़ी कृपा है। धन रहता तो न जाने और कितने अनर्थ बनते, दुष्ट लोगोंका साथ होता। धन नष्ट करके भगवान्ने हमारे हृदयमें दीनताका संचार किया। हमें यह सोचनेका अवसर दिया, कि धनहीन कैसे जीवन बिताते हैं। मद चूर होनेपर जो ऐश्वर्य मिलता है, उसका प्रभु-प्रसाद समझकर उपभोग करें तो उसमें कभी मोह नहीं होता। हमारा शरीर है, यदि हम पथ्य पूर्वक उतना ही आवश्यक भोजन करें, तब तो नीरोग बना रहेगा। जहाँ हमने जिह्वा-लोलुपतावश अनाप सनाप खाना आरंभ कर दिया, तहाँ पेट बढ़ जायगा। शरीर स्थूल हो जायगा। मेद अधिक हो जायगा। रोग आ आकर शरीरमें निवास करने लगेंगे। बाह्य दृष्टिवाले तो समझते हैं, ये बड़े आदमी हैं, मोटे हैं नीरोग और स्वस्थ हैं, किन्तु वास्तवमें वे रोगी हैं। उन्हें यदि ज्वर आ जाय तो वह विकारोंको पचावेगा। यह ज्वर दुःखके लिये नहीं है सुखके ही लिये है। उससे बढ़े हुए विकार पचेंगे। बढ़ी हुए धातुओंका शमन होगा। जब ज्वर पच जाय, और फिर शनैः शनैः पथ्य भोजन करे, कभी कुपथ्य न करे तो शरीर स्वस्थ रहेगा अतः भगवान जिसे भी धन सम्पत्तिसे भ्रष्ट करते हैं, उसके ऊपर कृपा ही करते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इन्द्रको बड़ा अभिमान था, कि कि मैं तीनों लोकोंका एक मात्र अधीश्वर हूँ। इसी अभिमानमें

भरकर उसने भगवान्के लिये भी न कहने योग्य बातें कहीं। अपने यज्ञके न करनेसे गोपोंपर क्रोध भी किया और सम्पूर्ण व्रजको डुबा देनेका भी प्रयत्न किया। जब वह अपने प्रयत्नमें विफल हो गया, तब तो वह मेघोंको लौटाकर अत्यंत लज्जित होकर अपने लोकको चला गया। भगवान् जब लौटकर व्रजमें आ गये तब इन्द्रने सोचा—"चलकर भगवान्से अपने अपराधके लिये क्षमा याचना करें, किन्तु सबके सम्मुख कैसे जायँ, गोप क्या सोचेंगे, यह देवताओंका राजा कैसा दीन हो रहा है। यही सब सोचकर वह इस घातमें लगा रहा, कि भगवान्को कभी एकान्तमें पावें, तो उनसे क्षमा प्रार्थना करें।

संयोगकी बात एक दिन भगवान् वनमें एकाकी विचर रहे थे। कहीं संकेत स्थानकी ओर अकेले जा रहे होंगे। कि इतने में ही इन्द्र ऐरावतको पीठ परसे उतरकर अपने सूर्यके स्पर्श करते हुए, उनके सम्मुख दंडवत् पड़ गया। भगवान्ने देखा, यह कौन मेरे पैरोंमें साष्टाङ्ग प्रणाम कर रहा है। मैं अपने गन्तव्य स्थानको जा रहा था। ये अर्थार्थी कहाँसे आकर बीचमें मेरे मार्गमें विघ्न उपस्थित करते हैं। वे वेष भूषा देख कर ही समझ गये, यह देवताओंका राजा इन्द्र है। वह बड़ी देरसे पैरोंपर पड़ा है। यद्यपि देवता गण पृथिवी का स्पर्श नहीं करते अधरमें ही रहते हैं, किन्तु आज इन्द्र इस नियमको भूल गया भगवान्ने कहा—"उठो भाई, उठो कौन हो ? क्या चाहते हो ?

भगवान्के बार बार कहने पर भगवद् अवज्ञा करनेसे मन ही मन अत्यंत लज्जित हुआ इन्द्र नीचा सिर किये हुए उदास मनसे भगवान्के सम्मुख खड़ा हो गया। उसका त्रिलोकाधिपति होनेका मद उतर गया था। अब वह मद रहित होकर अश्रु बहाता हुआ भगवान्की स्तुति करने लगा—"आप शुद्ध सत्त्व मय हैं, गुणातीत हैं, अज्ञानसे यह उत्पन्न प्रपञ्च

सत्तासे सत्‌सा भासता है,आपका जगत्‌से कोई सम्बन्ध न रहनेपर भी आप धर्मकी स्थापनाके निमित्त,युग युगमें अवतार धारण करते हैं। आप सबके सर्वस्व हैं, मुझ जैसे मानियोंके मानका मर्दन करके उनपर कृपा करते हैं, आप शिष्टोंका पालन और दुष्टोंका शासन करते हैं। आपका अवतार केवल भक्तोंकी प्रीतिके ही निमित्त होता है, आप कृष्ण हैं, जगदीश्वर हैं, हरि हैं। आपके पाद पद्मोंमें पुनः पुनः प्रणाम है।"

भगवान्‌ने कहा—"बात बढ़ानेकी आवश्यकता नहीं। अपना प्रयोजन कहो! तुम चाहते क्या हो?

देवेन्द्रने कहा—"भगवन्! मैं आपका ही बनाया हुआ इन्द्र हूँ। मुझे अपने ऐश्वर्यका बड़ा अभिमान हो गया था, यज्ञों में निरंतर भाग खाते खाते मैं यह मान बैठा था, कि सभी यज्ञोंका अधीश्वर एक मात्र मैं ही हूँ। सबको मेरा ही यज्ञ करना चाहिए। जब गोपोंने आपकी आज्ञासे मेरा मख नहीं किया, तो इसमें मैंने अपना बड़ा अपमान समझा। गोपोंसे इस अपमानका बदला लेनेके निमित्त मैंने अत्यंत क्रोध-पूर्वक वर्षा और वायुसे व्रजको नष्ट करनेकी चेष्टा की, किन्तु कृपालो! आपने मुझपर और व्रज-वासियोंपर बड़ी कृपाकी।

यह सुनकर भगवान् हँस पड़े और बोले—"व्रज-वासियों पर कृपा तो कही भी जा सकती है, कि इनकी वर्षासे रक्षाकी किन्तु तुमपर क्या कृपाकी। तुम्हारा तो मैंने उलटा यज्ञ ही भंग कर दिया।"

इसपर इन्द्रने कहा—"भगवान्! कृपा तो मेरे ही ऊपर सबसे अधिक हुई। यदि आप मेरे अभिमानको चूर्ण न करते, तो मैं और भी बड़े बड़े अनर्थ करता।"

यह सुनकर भगवान्‌ने कहा—"हाँ, भैया! यथार्थ बात

यही है। तुम अपने ऐश्वर्यके मदसे अत्यत ही मतवाले हो रहे थे। मैंने सोचा—"वैसे तुमसे कहूँगा, तो तुम मानोगे नहीं। क्योंकि जिसे अपने धनका, ऐश्वर्यका, प्रभावका, तपस्या तथा सिद्धियोंका अभिमान हो जाता है, वह दूसरोंकी बात सुनता ही नहीं जो ऐश्वर्य और लक्ष्मीके मदसे अन्धा हो रहा है, वह पुरुष मुझ दण्डपाणि प्रभुको देखता ही नहीं। इसीलिये मैं जिसपर कृपा करता,चाहता हूँ उसको ऐश्वर्य भ्रष्ट कर देता हूँ, जिससे वह मेरा निश्चिन्त होकर भजन कर सके।"

इसपर शौनकजीने पूछा—"सूतजी ! भगवान्की यह क्या कृपा, कि भक्तोंका धन, ऐश्वर्य तथा स्वजनोंसे पृथक् करके उसे कष्ट पहुँचाते हैं।"

यह सुनकर सूतजी गंभीर हो गये। वे बोले—"भगवान् ससारी वस्तुएँ तो नाशवान् हैं, क्षणिक हैं। इसके आने न आने में क्या कष्ट ? विपत्ति तो उसीका नाम है, जब भगवान् भूल जायँ, और सम्पत्ति वही है, जब भगवान् याद आवें। भगवान्को भूलकर संसारी विषयोंमें आसक्त होना यह सुख नहीं महान् दुख है। भक्तको जिसमें अधिक आसक्ति होती है भगवान् उसीसे उसका बिछोह करा देते हैं। पुराणोंमें इस विषय के अनेकों दृष्टान्त है। नलकूबर मणिग्रीवको अपने ऐश्वर्यमें अभिमान हो गया था, नारदजी द्वारा उनको ऐश्वर्यसे भ्रष्ट करके उन्हें भगवान्ने वृक्ष योनिमें डाल दिया। अतमें उनपर कृपा की अपनी भक्ति प्रदान की। महाराज चित्रकेतुको अपने इकलौते पुत्रमें अत्यत आसक्ति हो गयी थी, उनकी विमाताओंसे विष दिलाकर उसकी मृत्यु करा दी अंतमें उसे संकर्षण भगवान्की प्राप्ति हुई। नित्य ही हम ससारमें देखते हैं, जिनके हृदयमें भक्तिका कुछ अंकुर होता है, उनका प्यारेसे प्यारा सर्वगुण

सम्पन्न पुत्र मर जाता है। उस समय तो उन्हें अत्यंत दुख होता है, निरंतर रोते ही रहते हैं, किन्तु उसीके विषादमें उनके अन्तःकरणसे सब मल धुल जाते हैं, वे पहिलेसे भी अधिक भक्त बन जाते हैं, नित्य ही हम ऐसी घटनाओंको देखते हैं।

जिस समय भगवान् बुद्ध इस पृथिवीपर विचरण करते थे उन दिनों वे सर्वत्र वैराग्यमें ही सुख है, इसीका उपदेश करते। सहस्रों पुरुष उनके चरणोंमें आकर शान्ति लाभ करते थे उनकी बड़ी ख्याति थी। सभी उन्हें शान्तिका दूत मानते थे।

उन्हीं दिनों एक अत्यंत धनिक महिला एक बड़े नगरमें रहती था। उसपर अटूट धन सम्पत्ति थी। उसका एक अत्यंत ही सुंदर लड़का था, उसे वह प्राणोंसे अधिक प्यार करती, उसके लिये वह सब कुछ करनेको तैयार रहती। लडका भी बड़ा सुंदर, सुशील होनहार और मातृभक्त था। सहसा उसे एक बार ज्वर आया। माताने प्राणोंका पण लगाकर उस की चिकित्सा करायी। उसने घोषणा कर दी, जो मेरे बच्चेको बचा देगा, उसे मैं अपना सर्वस्व दे दूँगी।" किन्तु मृत्युके मुख से बचानेकी सामर्थ्य किसमें है। बचा बच न सका वह मर गया। माताके दुखका वारापार नहीं था। उसने बच्चेके मृतक शरीरको छातीसे चिपटाया रोती ही रही। पल भरको भी उसे अपनेसे पृथक् न किया। इस प्रकार उसे दो दिन हो गये।

उसी समय उसने सुना भगवान् बुद्ध मेरे नगरमें पधारे हैं। वे मृतकोंको जिला सकते हैं। अपने बच्चेके शवको छातीसे चिपटाये ही चिपटाये वह उनके समीप गयी और बोली—"आप मेरे बच्चेको जिला देंगे, तथागत ?"

भगवान् बुद्ध उसके ऐसे मोहको देखकर समझ गये यह कोई संस्कारी है। जो अनित्य वस्तुमें इतनी आसक्तिकर सक-

ती है. यदि इसकी यही आसक्ति वैराग्यमें हो जाय तो संसार सागरसे इसका बेड़ापार हो जाय। यही सोचकर वे बोले—"हाँ, मैं इसे जिला सकता हूँ, किन्तु तुम्हें एक वस्तु लाना होगी।"

अत्यंत ही उत्सुकताके साथ उसने कहा—"आप आज्ञा करें चाहे जितना भी द्रव्य व्यय करना पड़े, मैं आपकी बतायी वस्तुको अवश्य लाऊँगी।"

भगवान् बोले—"नहीं, मुझे मूल्यवान् वस्तुकी आवश्यकता नहीं। मुझे केवल एक मुट्ठी सरसों चाहिये। किन्तु वह सरसों ऐसे गृहस्थीके घरसे लानी होगी, जिसके घरमें कभी किसी की मृत्यु न हुई हो।"

वह तो पुत्रके प्रेममें पगली हो रही थी, उसे कुछ ध्यान तो था ही नहीं तुरंत उठी और चल दी। प्रत्येक घरमें जाती और कहती मुझे एक मुट्ठी सरसों दे दो।" इतनी धनमती महिला को एक मुट्ठी सरसों माँगते देखकर सभी आश्चर्य चकित हो जाते। उसके लिये सरसों लेकर आते। वह पूछती—"तुम्हारे घरमे किसीकी मृत्यु तो नहीं हुई है ?" तब वे कहते—"हमारे यहाँ तो मृत्यु हुई है।" इतना सुनकर वह वहाँसे चल देती, दूसरेके घर जाती। वहाँ भी ऐसा उत्तर पाकर तीसरेके घर जाती। इस प्रकार वह दिन भर भटकती रही। चलते चलते वह थक गयी। कोई घर उसे ऐसा न मिला जहाँ किसीकी मृत्यु न हुई हो। कोई ऐसा व्यक्ति न मिला जिसका कोई सम्बन्धी न मरा हो। वह लौटकर भगवान् बुद्धके निकट आयी।

भगवान्ने पूछा—"तुम सरसों लायी ?"
उसने दीनताके स्वरमें कहा—'प्रभो! कहीं मिली ही

नहीं।"

बनावटी विस्मयके स्वरमें भगवान् बोले—'तुम्हें एक मुट्ठी कहीं सरसों नहीं मिली ?"

उसने कहा—'मिली क्यों नहीं! सरसों तो बहुत मिली, किन्तु कोई घर ऐसा नहीं मिला, जिसमें मृत्यु न हुई हो, कोई व्यक्ति ऐसा नहीं मिला, जिसका कोई सम्बन्धी न मरा हो।"

इस पर हँसकर भगवानने कहा—"जब सभी घरोंमें मृत्यु होना अनिवार्य है, तो तुम्हारे घरमें मृत्यु हो गयी, इसमें आश्चर्यकी कौन-सी बात है ? जब सभीके सम्बन्धी सदा नहीं जीवित रह सकते हैं। जो जन्मा है, वह मरेगा। जन्म लेने वालेकी मृत्यु अवश्यम्भावी है।" इतना सुनते ही उसे ज्ञान हो गया। अपना सर्वस्व त्याग कर वह भिक्षुणी बन गई। भगवान्की उसके ऊपर कृपा हो गयी।

पाकर इन्द्र अपने लोकको चला आया। अब कामधेनु ने आकर भगवान्‌को जैसे गोविन्द की उपाधि दी उसका वर्णन आगे करूँगा

छप्पय

जनक अकमहँ करहि तनय नित अगनित अविनय।
पितु,,ताड़न हू करहिँ तदपि हिय रहहि प्रेममय॥
मेरे गुरु पितु मातु बन्धु तुम सब कछु स्वामी।
समुझि शक्र मद रहित कहैं हरि अन्तरयामी॥
इन्द्र! जाहु निज लोककूँ, मम आयसु पालन करो।
कबहुँ न करियो गर्व अब, मम सिख यह हियमहँ धरो॥

९५६

देवे वर्षतियज्ञविप्लवरुषा वज्राश्मवर्षानिलैः ।
सीदत्पालपशुस्त्रि आत्मशरणं दृष्ट्वानुकम्प्युत्स्मयन् ।।
उत्पाट्यैककरेण शैलमबलोलीलोच्छिलीन्ध्रं यथा ।
बिभ्रद्गोष्ठमपान्महेन्द्रमदभित्प्रीयान्न इन्द्रो गवाम् ।।*

(श्रीभा, १० स्क, २६ अ, २५ श्लो,)

छप्पय

तब पुनि बोली सुरभि श्याम तुम लीलाधारी ।
मम सन्ततिकी विपति धारि गिरि हरि तुमटारी ॥
अज अनुमति तैं आज आप अभिषेक करावें ।
शक्र सुरनि के इन्द्र आप 'गोविन्द' कहावें ।।
निज पयतैं प्रभु रुख निरखि । करो धेनु अभिषेक पुनि ।
हरपे हरि अभिषेक लखि । इन्द्र सहित सुर -सिद्ध मुनि ।।

हम अपनी श्रद्धा जतानेके लिये बड़ोंके सम्मुख छोटी छोटी वस्तुओंका उपहार रखते हैं। बड़ोंको अपनी बुद्धिके अनुसार छोटे नामोंसे सम्बोधित करते हैं। हमारी दृष्टिमें वह

* श्री शुकदेव जी कहते हैं—"राजन् ! जिन्होंने तथा समस्त यज्ञ भङ्ग होने के कारण कुपित हुए इन्द्रके द्वारा वर्षा करनेपर ब्रजवासियोंको

बहुत बड़ा आदर है, किन्तु उनके लिये वह कुछ भी नहीं है, तो भी वे हमारे प्रसन्नताके निमित्त उस क्षुद्र उपहारको उस अल्प उपाधिको ग्रहण करते हैं। इससे अर्पण करने वालोंको सुख होता है। महत पुरुषोंके समस्त कार्य दूसरोंके ही निमित्त होते हैं। स्वयं तो वे आप्त काम होते हैं, किन्तु भक्तों के लिये अनुगता के लिये वे सब कुछ करते हैं। उनके साथ हँसते खेलते हैं शिष्टाचार की बातें करते हैं उनकी की हुई पूजा को ग्रहण करते हैं। यही महत्पुरुषोंकी महत्ता है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियों! इन्द्रके क्षमा-याचना करनेपर समस्त गोजातिकी आदि माता सुरभि श्रीकृष्णके समीप आई। उस महामनस्विनी कामधेनुने आकर प्रथम गोपवेषधारी भगवान श्रीकृष्णके पादपद्मोंमें प्रणाम करके तथा उन्हें सुन्दर सम्बोधनोंसे सम्बोधित करके अपनी संतानों सहित कहना आरम्भ किया। कामधेनु बोली हे कृष्ण! हे कृष्ण! आप सम्पूर्ण चराचर जगतके एक मात्र अधीश्वर हैं। हे महायोगिन्! आप संभव असंभव सब कुछ करनेमें समर्थ हैं। हे विश्वात्मन्! आप घट घटकी जानने वाले हैं। हे विश्वकी उत्पत्ति स्थिति और प्रलयके एक मात्र स्थान! यह जगत् आपका लीला विलास मात्र ही है। हे अच्युत आप वास्तवमें लोकनाथ हैं। आपके द्वारा गौजाति भी सनाथ होगई। इन्द्रतो क्रोधमें भरके मेरी सन्तानोंको मारनेके लिये उद्यत हो था। आपने ही अपने

स्त्री और पशुओंके सहित वज्रपात तथा ओलोंकी बौछार और प्रचण्ड पवनसे पीड़ित होकर शरणमें आनेपर सम्पूर्ण व्रजकी रक्षाकी। उस समय जिन्होंने गोवर्धन पर्वतको लीला पूर्वक हँसते हँसते एक हाथसे उखाड़कर उसी प्रकार उठा लिया जिस प्रकार कोई निर्बल बालक क्रीड़ा में कुकुरमुत्ताको उठालेता है ऐसे इन्द्रके मदको चूर्ण करने वाले गौओंके इन्द्र श्रीनंदनंदन हमपर प्रसन्न हों।"

योग प्रभावसे गिरिराज गोवर्धनको छतरीकी भाँति उठाकर गौजातिकी रक्षाकी। हे जगत् पते! आप हमारे परम पूजनीय देव हैं। आप हमारी एक प्रार्थना स्वीकार करें। हम आपके चरणोंमें कुछ निवेदन करना चाहती हैं।"

भगवान्ने कहा—"हे कामधेनु! तुम जो कहना चाहती हो, वह निर्भय होकर कहो। संकोच करनेका काम नहीं है।"

यह सुनकर सुरभिका साहस बढ़ा उसने विनयके साथ भगवान्से कहा—"प्रभो! आप सदाही गौ, ब्राह्मण देवता तथा साधु संतोंकी रक्षाके लिये अवतार धारण करते हैं। हम चाहती हैं आप गौओंके इन्द्र बनें। हम आपको "गोविन्द" की उपाधिसे विभूषित देखना चाहती हैं।"

यह सुनकर हँसते हुए भगवान् बोले—"हे सुरभि—"तीनों लोकोंके इन्द्र तो ये शतक्रतु देवेन्द्र हैं ही, फिर तुम मुझे गौओंका पृथक इन्द्र क्यों बनाना चाहती हो। ये ही समस्त ऋषि मुनियोंको देवताओंके तथा तीनों लोकोंके इन्द्र हैं।"

कामधेनुने कहा—" प्रभो! इन्द्रतो वही होता है, जो विपत्तिसे रक्षा करे। इन्द्रने तो जान बूझकर और गौओंको विपत्तिमें डालने का प्रयत्न किया। रक्षातो आपने ही की। अतः! हम अपनी श्रद्धा भक्ति व्यक्त करनेके निमित्त आपको इन्द्र बनाना चाहती हैं। कृपा करके आप हमारी इस विनयको स्वीकार करलें।"

भगवान्ने कहा—"गौमाता! ब्रह्माण्डमें इन्द्र आदितो लोक पितामह ब्रह्माजी बनाया करते हैं, उनकी अनुमतिके बिना किसी को इन्द्र बनाने का अधिकार ही नहीं।" ऐसा सृष्टिका सनातन नियम है।"

शीघ्रताके साथ कामधेनुने कहा—"हम लोकपितामह ब्रह्माजी की आज्ञासे ही तो यह प्रस्ताव कररही हैं। उन्होंने ही तो हमें

इन देवताओंकी माता अदितिके सहित आपकी सेवामें भेजा है। भगवान् आपने भूमिका भार उतारनेके निमित्त भूमण्डलपर धारण किया है। अतः हम आज आपका विशेषाभिषेक करके आपको 'गोविन्द" कीउपाधिसे विभूषित करना चाहती हैं।"

भगवानने सरलताके साथ कहा—"अच्छी वात है, जिसमें तुम्हारी प्रसन्नता हो। किन्तु ये इन्द्र तो इसमें अपना अपमान न समझेंगे ?"

इसपर इन्द्रादि समस्त देवताओंकी माता भगवती अदिति देवीने कहा—"भगवान ! आपतो चराचर विश्वके इन्द्र हैं। गौओं का इन्द्र होना यह तो आपके महत्वको घटाना है। इन्द्र तो इसमें अपना सौभाग्य समझेगा। इससे उसका गौरव और बढ़ेगा। वह स्वयं अपने ऐरावतकी सूंड द्वारा लाये हुए आकाश गंगाके जलसे आपका अभिषेक करेगा।" -

सबकी ऐसी इच्छा देखकर भगवान्ने अभिषेककी अनुमति दे दी। कामधेनुने अपने दिव्य दूधसे यशोदानन्दनका अभिषेक किया। तदनन्तर ऐरावतकी सूंडसे लाये हुए गंगा जलसे इन्द्रने भगवान्का अभिषेक किया। सभीने मिलकर विधिवत् भगवान्की पूजाकी। उस समय अपने अपने विमानोंमें बैठकर देवता, सिद्ध, गन्धर्व, गुह्यक, विद्याधर तथा चारण आदि वहाँ उपस्थित हुए। अभिषेकके निमित्त बड़ा भारी समाज लगा। भगवान्को एक दिव्य सिंहासनपर बिठाया गया। सर्वप्रथम नारदजीने स्वरब्रह्म विभूपिता वीणाके तारोंपर तान छेड़ते हुए "श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे। हेनाथ नारायण वासुदेव। आदि भगवान्के सुमधुर नामों का कीर्तन किया। तदनन्तर तुम्बुरु आदि गन्धर्वों ने गोविन्द भगवान्की स्तुतिके और भी गीत गाये। अन्य गन्धर्व, विद्याधर, सिद्ध तथा चारणगण भी भगवानका संसार

दोषापहारी निर्मल यश गान करने लगे। स्वर्गकी समस्त अप्सरायें भगवानके अभिषेकके उपलक्ष्यमें नृत्य करनेके निमित्त समुपस्थित हुईं थीं। देवेन्द्रका संकेत पाते ही वे अति आनन्दित होकर भाँति भाँतिके हाव भावोंको दिखाते हुई नृत्य करने लगीं। आज उन्होंने अपनी नृत्य कलाको सार्थक समझा। जो कला भगवत् सेवामें काम आवे वास्तवमें वही कला है, शेष कलायेंतो कुकालायें हैं—उदर पूर्तिकी साधिका मात्र हैं। आज अप्सराओंने अपने नृत्यसे सभीको विमुग्ध बना दिया।

अवसर पाकर मुख्य मुख्य देवता तथा लोकपालोंने भगवान् कीस्तुति करके उनके ऊपर नंदन काननके सुमनोंकी वृष्टिकी। तीनों लोकोंमें परमानन्द छागया। गौओंके स्तनोंसे अपने आप ही दुग्ध बहने लगा। जिससे सम्पूर्ण पृथिवी दुग्ध मयी बनगई। मानों गौऐं भगवानकी प्रिया पृथिवीका भी अभिषेक कर रही हों। नदियोंका जल अमृत तुल्य होगया, उनके जलमें नाना प्रकारके रसोंका स्वाद आने लगा। वृक्ष अपने कोटरोंसे मधु चुआकर प्रसन्नता प्रकट करने लगे। असमयमें ही समीमें पुष्प फल आने लगे। बिना जोते बोये ही ओषधियाँ उत्पन्न होने लगीं। पर्वतोंको भीतर जो बहुमूल्य मणियाँ छिपी हुई थीं वे प्रत्यक्ष प्रकट दिखाई देने लगीं।

सूतजी कहते हैं—'मुनियो! इस प्रकार भगवानका बड़े ठाठबाठ तथा समारोहके साथ अभिषेक हुआ। सर्वप्रथम इन्द्रने भगवानको 'गोविन्द' कहकर पुकारा। तदनंतर सभी गोविन्द कह कर भगवानको प्रणाम करने लगे। उस समयजो जीव स्वभावसे ही क्रूरथे वे भी वैरहीन होगये। इस प्रकार गोप रूपधारी श्रीहरिका 'गोविन्द' पदपर अभिषेक करके

भगवानको आज्ञा लेकर कामधेनु देवेन्द्र तथा समस्त देव उपदेव प्रभुके पाद पद्मोंमें प्रणाम करके अपने अपने लोकोंको चले गये। भगवान्भी जहाँ जा रहे थे, वहाँके लिये चले गये। उन्हें इस उपाधिसे हर्ष क्या होना था, वे निखिल कोटि ब्रह्माण्ड नायक स्वयं ही हैं। इस प्रकार भगवानका नाम गोविन्द पड़ा। मुनियो! यह मैंने अत्यंत संक्षेपमें गोवर्धन धारी गिरधारी भगवान् नन्द नन्दनकी गोवर्धनधारी धारण लीला इस लीलामें भगवान्ने इन्द्र-का मदचूर्ण करके उनका उद्धारकिया। अब जिस प्रकार जलेश वरुणको दर्शन देकर उन्हें कृतार्थ किया, उस कथाको आगे कहूँगा। आशा है आप सब समाहित चित्तसे श्रवण करेंगे।

छप्पय

यों गिरिवर हरि धारि इन्द्र मख भङ्ग करायो'।
करि मदमर्दन फेरि क्षमा करि मान बढ़ायो॥
हरि आयसु लै इन्द्र सुरभि निज लोक सिधाये।
कुञ्ज विहारी करत केलि वृन्दावन आये॥
जे श्रद्धातैं सुना हिनर, जा चरित्र कूँ नेमतें।
काम क्रोध नसि जाँइ रिपु, प्रभु पद पावें प्रेमतें॥

—:※:—

भगवान् की वरुणके ऊपर अनुग्रह

(९५७)

चुक्रुशुस्तमपश्यन्तः कृष्ण रामेति गोपकाः ।
भगवांस्तदुपश्रुत्य पितरं वरुणाहृतम् ।
तदन्तिकं गतो राजन्स्वानामभयदो विभुः॥*

श्री भा, १० स्क, २८ अ, ३ श्लो,

छप्पय

हरिवासर व्रत करें सबहि व्रजमहँ नर नारी।
निर्जल कछु फल खाइँ रहें कछु दूधाधारी॥
एकादशी पुनीत सुदी कातिककी आई।
निराहार व्रजराज रहे दिन दयो बिताई॥
जानि प्रात उठिचलि दये, स्नान करन यमुना निकट।
धरि पट जलमहँ घुसि गये, जानी नहिं वेला विकट॥

वैष्णव धर्ममें एकादशी व्रतका बड़ा महात्म्य है। ऐसा वर्णन है कि एकादशीके दिन सभी पाप अन्नमें आकर निवास करते हैं, अतः एकादशी को जो अन्न खाता है, वह पापोंको खाता है। एकादशीको हरिवासर

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! द्वादशीको स्नानके लिये येनन्दजी को लौट कर आते न देख कर गोप गण, हे राम् हे! कृष्ण! ऐसा कह कह

भी कहा है। पुराणोंमें हम प्रधानतया चार बातोंको ही देखते हैं। भगवान्के नाम और गुणोंकी महिमा, तुलसीकी महिमा, गंगाजीकी महिमा और एकादशी व्रतकी महिमा। ऐसा स्यात ही कोई पुराण हो जिसमें इन बातों का उल्लेख न हो। एकादशी व्रतपर तो पुराणोंमें बहुत लिखा गया है। एक स्थानपर तो एकादशी व्रतकी अत्यत महिमा बताते हुए कहा गया है। जैसे देवताओंमें श्रीकृष्ण हैं, वर्णोंमें ब्राह्मण श्रेष्ठ है, देवताओंमें जैसे गणेश, शास्त्रोंमें वेद, तीर्थोंमें गंगा, धातुओंमें सुवर्ण, जीवो में वैष्णव, धनोंमें विद्या, साथियोंमें जैसे धर्मपत्नी, प्रमथोंमें रुद्र, श्रेय करने वालोंमें जेसे बुद्धि, इन्द्रियोंमें जैसे आत्मा, चंचलोंमें जैसे मन, गुरुओंमें माता, प्रियोंमें जैसे पति, बलवानों मे जैसे देव, गणना करने वालोंमें काल, मित्रोंमें जैसे सौशील्य, शत्रुओंमे रोग, कीतिमन्तोंमें कीर्ति, घरवालोंमे जैसे घर, हिंसकोंमें खल, दुष्टोंमें जैसे पुश्चली, तजस्वियोंमें सूर्य, सहिष्णुओंमें पृथिवि, खाने वाले पदार्थोंमें अमृत, जलाने वालोंमे अग्नि, धन देन वालोंमें लक्ष्मी, सतीसाध्वियोंमें जेसे शिव प्रिया सती, प्रजा पतियोंमें ब्रह्मा, जलाशयोंमें सागर, वेदोंमें सामवेद, छन्दोंमे गायत्री, वृक्षोंमे पीपल, पुष्पोंमे तुलसी मजरी, मासोंमे मार्गशीर्ष, ऋतुओं

मेंवसत, आदित्योंमे सूर्य, रुद्रोंमें शङ्कर, वसुओंमे भीष्म, वर्षोंमें भारतवर्ष, देवर्षियोंमें नारद, ब्रह्मर्षियों मे भृगु, राजाओंमें राजा रामचन्द्र, सिद्धोंमे कपिल, ज्ञानी योगियोंमे सनत्कुमार, हाथियोंमें ऐरावत, पशुओंमे शरभ, पर्वतोंमे हिमालय, मणियोंमे

कर चिल्लने लगे। स्वजनोंको अभय प्रदान करने वाले श्रीहरि उनका करुण क्रंदन सुनकर और, पिताको वरुण लेगया है' इस बातको जान कर वे वरुणके समीप गये।"

कौस्तुभमणि, पुण्यस्वरूपिणी नदियोंमें जैसे सरस्वती, गन्धर्वोंमें चित्ररथ, यक्षोंमें कुबेर, राक्षसोंमें सुमाली, स्त्रियोंमें शतरूपा, मनुष्योंमें स्वायम्भुवमनु, सुन्दरी अप्सराओंमें रम्भा, और जैसे समस्त माया करने वालियोंमें माया सर्व श्रेष्ठ है वैसे ही समस्त व्रतोंमें एकादशी व्रत सर्व श्रेष्ठ है। पुराणोंमें एकादशी व्रत सर्व श्रेष्ठ है। पुराणोंमें एकादशी व्रत विधानों का विस्तार से वर्णन है। दशमीके दिन एक समय हविष्यान्न भोजन करें, एकादशी को निर्जल रहे, द्वादशीको एक समय पारण करें। इस प्रकार उसकी विधिका वर्णन है। व्रज वासी सभी एकादशी व्रत करते थे। कहते हैं श्रीकृष्णका प्राकट्य भी एकादशी व्रतके ही कारण हुआ। इसलिये नन्द जो सदा एकादशी व्रत किया करते थे। दिन भर व्रत करते रात्रिमें जागरण करते और पुनः बड़ी धूम धामसे पारण करते।

सूत जी कहते हैं—"मुनियो ! व्रजमें रहकर भगवान् पृथिवी निवासियोंपर ही अपनी कृपाकी वृष्टि नहीं करते थे, अपितु देवताओं और लोकपालोंको भी अपनी चरण धूलिसे कृतार्थ करते थे। ब्रह्माजीके मोहको दूर किया, इन्द्रके मदको चूर किया। ये सब बातें देव लोकमें सर्वत्र फैल गईं। लोक पाल वरुण तो आरम्भसे ही भगवान्‌के भक्त थे। उन के मनमें भी सङ्कल्प हुआकि भगवान् नन्द नन्दन का हमें भी सपरिवार दर्शन हो। हम भी स्वयं अपने हाथोंमें उनकी पूजा करके अपने ऐश्वर्यको सार्थक करें। सर्वान्तर्यामी प्रभुने उनकी इच्छा पूरी करने का विचार किया।

एक दिन नंदजीने एकादशी का व्रत रखा निराहार निर्जल व्रत सर्वश्रेष्ठ बताया है। यदि निर्जल न रहा जाय, तो एक बार थोड़ाजल पीले। यदि जल पीकर भी न रहा जाय तो दुग्धपर रहना यहमध्यम पक्ष है। फल खाकर रहना यह अधमय कोटिका व्रत है। सिंघाड़े, कूटू, रामदाने का आटा, साग, —

आदि खाना यह केवल अन्नका बचाव मात्र है। नंदजी सदा निराहार व्रत करते थे। दिन भर व्रत करते और रात्रिमे जागरण करते। उस दिन कार्तिक शुक्ला देवोत्थापिनी एकदाशी थी। शास्त्रीय विधिसे उन्होंने घरको लिपाकर शालग्राम जीकी स्थापना करके उनका पूजन अर्चन किया। रात्रिमें जागरण करते भूखमें नींद भी कम ही आती है और जागरणकी रात्रि भी बड़ी प्रतीत होती है। आधिरात्रि बीतनेके अनन्तर ही नंदजीको ऐसा लगा मानो अरुणोदय हो गया है। वे तुरन्त अपना रेशमी मुकुटा और जलकी झारी लेकर एक सेवकके साथ यमुना किनारे पहुँचे। नित्यकृत्योंसे निवृत्त होकर उन्होंने जलमें प्रवेश किया। उस समय रात्रि शेष थी, आसुरी वेला थी, जलपर वरुणके दूतों का पहरा था। उस समय जलमे प्रवेश करना निषेधथा, किन्तु नंदजीने उधर ध्यान नहीं दिया। सयोगकी बातकि उसी समय कोई वरुण का दूत जलके भीतर बैठा था वह उन्हे साधारण मनुष्य समझकर जलमार्गसे पकड़कर वरुण लोकमे लेगया। वरुणजीने जब देखा, मेरा भृत्य बिना जाने आनंद कद श्रीकृष्ण चन्द्र जीके पिताको पकड़ लाया है तब वे उस पर बड़े क्रुद्ध हुए। सेवकने कहा—"प्रभो! मैं तो बिना जाने आसुरी वेलामें स्नान करते हुए इन्हें पकड़ लाया।"

वरुणने सोचा—"कोई बात नहीं, भगवान् जो भी करते हैं, मङ्गलके ही निमित्त करते हैं। इसी कारण मेरे गृहको भगवान् अपने पादपद्मोंका परागसे पावन बनवें। पिताको लेने जब वे मेरे लोकमें आवेंगे तब मैं परिवार सहित उनकी पूजा कर सकूँगा।" यही सोचकर उन्होंने नन्दजी को बड़े आदरसे अपने यहाँ रखा। इधर जब सेवकनेदेखा व्रजराजको डुबकी लगाये बड़ी देर हो गई वे जलसे बाहर नहीं

निकले, तब तो उसे संदेह हुआ। वह भी जलमें घुसा इधर उधर देखा, नन्दजीका कुछ पता ही न चला। तब तो वह बड़ा घबराया। दौड़ा दौड़ा व्रजमें गया। सब गोप इकट्ठे हो गये, क्षण भरमें बात व्रजभर में फैल गयी। सबने देखा—'अब श्रीकृष्णके अतिरिक्त कोई भी हमारी इस विपत्तिसे रक्षा नहीं कर सकता। उन्होंने ही हमारी बड़ी बड़ी विपत्तियोंसे रक्षाकी है, इस विपत्तिसे भी वे ही बचावेंगे।" यह सोचकर वे राम कृष्णका नाम लेलेकर करुण स्वरमें क्रंदन करने लगे। यशोदाजी और रोहिणीजीने भी जब सुना, तो वे भी हाय हाय करके डकराने लगीं।

बलरामजी और श्रीकृष्णजी सुखपूर्वक शैयापर शयन कर रहे थे। माता तथा गोपोंके करुण क्रंदनको सुनकर भगवान् जगे और माताके समीप आकर बोले—"मैया! तू इतनी दुखी क्यों हो रही है? तू अपने दुःखका कारण मुझे बता।"

माताने कहा—"बेटा! तेरे पिता जलमें डूब गये। यमुना स्नान करने गये थे। गोता लगानेके अनंतर उछले ही नहीं।"

श्रीकृष्णने क्रुद्ध होकर कहा—'जलका ऐसा साहस कि मेरे पिताको डुबादे। माँ! तुम चिन्ता मत करो, मैं अभी पिताजीको लाता हूँ।"

इतना कहकर भगवान् गोपोंके साथ उस घाटपर गये। वहाँ जाकर वे अपने योगप्रभावसे उसी शरीर द्वारा वरुण लोकमें गये।

भगवान् हृषीकेशको अपने लोकमें आते देखकर वरुण के हर्षका ठिकाना नहीं रहा। वह आनन्दमें विभोर होकर [illegible] करने लगा। जीवके समस्त कर्म प्रभु प्राप्तिके ही निमित्त [illegible] भगवान् कृपा करके जिसके मन्दिरमें पधार जायँ, उसके [illegible]

कौनसा कृत्य शेष रह जाता है । लोकपाल जलेशने प्रभु दर्शनोंसे परम प्रमुदित होकर पूजन सामग्रियों द्वारा प्रेमपूर्वक उनका पूजन अर्चन किया। फिर दोनों हाथोंकी अञ्जलि बाँधकर गद् गद वाणीसे कहने लगा—"प्रभो ! आज मेरा शरीर धारण करना सफल हुआ। आज मेरे समस्त मनोरथ पूर्ण हुए. क्योंकि समस्त सिद्धियोंको देनेवाले आपके चरणारविन्द ही हैं। जो मनुष्य आपके चरण कमलोंकी श्रद्धाभक्ति सहित सेवा करते हैं वे संसार सागरसे विना प्रयासके पार हो जाते हैं। अब मेरे उद्धारमें संदेह ही क्या रहा। आपके चरण दर्शनोंसे मैं कृतार्थ हो गया। आपकी भावमयी मनोमयी मूर्तिके चिंतनसे ही सब शोकशान्त हो जाते हैं, तो मैंने तो आपके प्रत्यक्ष दर्शन किये हैं। लोक सृष्टिकी कल्पना करनेवाली मायाके आप ईश हैं। आप षडैश्वर्य सम्पन्न हैं, सर्वत्र व्याप्त हैं तथा सबके परम आत्मा हैं। मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ, केवल आपके चरण कमलोंमें श्रद्धा सहित प्रणाम ही करता हूँ" भगवान्ने कहा—"अरे भाई ! प्रणाम नमस्कार तो होगयी, यह बताओ हमारे पिताजी कहाँ हैं सुना है उन्हें तुम अपने लोकमें पकड लाये हो ?" वरुण देवने कहा—"नहीं, भगवन् ! मैं तो नहीं पकड़कर लाया, हाँ मेरे एक अज्ञानी भृत्यसे भूलमें यह अपराध अवश्य हो गया है। उसने जान बूझकर यह अपराध नहीं किया है। भ्रमवश-अज्ञानवश-उससे ऐसा अनुचित कार्य हो गया है। आप तो शरणागतवत्सल हैं कृपाके सागर है । उसके अज्ञानकृत अपराधको क्षमा करदें।"

यह कह कहकर वरुण भीतर बैठे हुए नन्दजीको सत्कार पूर्वक लिवा लाये और हाथ जोडकर बोले–"हे पितृवत्सल प्रभो !

ये आपके पूजनीय पिता हैं। मेरे भृत्यके कारण इन्हें कष्ट हुआ। किया तो उसने अक्षम्य अपराध हो, किन्तु इससे मेरा तो लाभ ही हो गया। मुझे घर बैठे आपके देवदुर्लभ दर्शन हो गये। मेरा गृह आपकी चरणधूलिसे पवित्र हो गया। आप तो घट घटकी जाननेवाले हैं। प्राणि मात्रके साक्षी हैं; अतः मुझपर आप क्रुद्ध न हों। सदा सेवक जानकर कृपा दृष्टि बनाये रखें।"

अपने पिताको देखकर भगवान् उठकर खड़े हो गये, उन्हें ऊँचे सिंहासनपर बिठाया। वरुणजीने विधि-पूर्वक भगवान्‌की तथा नन्दजीकी भी पूजाकी। वरुणजी द्वारा भगवान्‌का ऐसा स्वागत सत्कार देखकर नन्दजीको बड़ा विस्मय हुआ। वे श्रीकृष्णके ऐसे अमित प्रभाव और महान् ऐश्वर्यको देखकर चकित रह गये। भगवान्‌ने वरुणसे कहा—"जलेश! अब हम जाना चाहते हैं, तुम आनंदपूर्वक अपने पदपर स्थित रहकर मेरा स्मरण किया करो।"

भगवान्‌की आज्ञा पाकर वरुणजीने नंद सहित भगवान्‌को साश्रुनयनोंसे प्रेम-पूर्वक विदा किया। भगवान् तुरन्त उसी घाटपर आकर नंदजीके सहित प्रकट हो गये। सब गोप उन्हें देखकर उसी प्रकार प्रसन्न हुए, जिस प्रकार अत्यंत प्रिय मृतक बन्धुके जीवित होनेपर उसके सम्बन्धी प्रसन्न होते हैं। सबने नन्दजीकी चरण वन्दना की, कोई उनसे गले लगकर मिले किसी का उन्होंने आलिंगन किया। गोपोंने पूछा—"बाबा! कहाँ चले गये थे?"

नंदजीने कहा—"भैया! क्या बतावें। एक वरुणका सेवक मुझे पकड़कर वरुण लोकमें ले गया। जब उसने मुझे अपराधी की भाँति वरुणके आगे उपस्थित किया तो मुझे पहिचानकर वरुण अपने आसनसे उठकर खड़ा हो गया। उसने मेरा बड़ा

भारी स्वागत सत्कार किया। वह बडा दिव्यलोक था। वरुणजी का वडा ऐश्वर्य हैं, वे पश्चिम दिशाके लोकपाल ही ठहरे। पीछे से कृष्ण भी वहाँ पहुँच गया। इसे देखकर तो वरुणने बड़ी विनय दिखायी। सेवककी भाँत हाथ जोड़े इसके सम्मुख खड़ा विनती करता रहा, पीछे पीछे फिरता रहा। बड़ी भारी पूजा की। इसके पीछे मेरी भी पूजा हो गयी।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! नन्दजीके मुखसे जब गोपोंने उनके महान् ऐश्वर्य और प्रभावकी बातें सुनी, तो सभी उन्हें अब ईश्वर ही मानने लगे। अति उत्सुक होकर वे मन ही मन सोचने लगे—"यदि श्रीकृष्ण सर्वेश्वर हैं ईश्वरोंके भी ईश्वर हैं, तो कभी हमपर भी कृपा करेंगे-क्या ? कभी हमे भी अपने अपार ऐश्वर्यके दर्शन करावेंगे -क्या ? हमें तो यह अभी तक असुरोंकी मार धाड़ ही दिखाता रहा है। अपना ऐसा दिव्य प्रभाव तो कभी दिखाया नहीं। हमें भी कभी अपनी सूक्ष्मगति तक पहुँचावेंगे। हमें भी कभी वैकुठएके दर्शन करावेंगे।" भगवान् तो भक्तवाँञ्छा कल्पतरु हैं उनके भक्त मनसे जो इच्छा करते हैं, उसे ही पूर्ण करते हैं जिस प्रकार गोपोंको वैकुण्ठके दर्शन कराये उस कथाको मैं आगे कहूँगा।"

छप्पय

दूत पकरि लै गयो तुरत जलपतिके पाहीं।
इत ब्रजमहँ नँदराय लौटिके आये नाहीं॥
समाचार सुनि दुसद वरुनके पास गये हरि।
सौंपे श्रीव्रजराज वरुनने बहु पूजा करि॥
पिता संग घनश्याम लै, आये ब्रजमहँ सुखसदन।
सुनि अति वैभव कृष्णको, भयो सबनिको मन मगन॥

—::—

गोपोंको वैकुण्ठके दर्शन

(९५८)

इति सञ्चिन्त्य भगवान्महाकारुणिको हरिः ।
दर्शयामास लोकं स्वं गोपानां तमसः परम् ॥*

(श्रीभा० १० स्क० २८ अ० १४ श्लो०)

छप्पय

गोप विचारें श्याम हमें वैकुण्ठ दिखावें ।
गोता छमहू बैठि ब्रह्मसरमाहिँ लँगावें ॥
सबकी इच्छा जानि विष्णु निजलोक दिखायो ।
सुखमहँ सबई मग्न भये सब जगत् भुलायो ॥
ब्रह्मानन्द चखाइ हरि, पुनि वैकुण्ठ दिखाइकें ।
भये चकित सब गोपगन, हरिपुर दर्शन पाइकें ॥

सुख, शान्ति, सन्तोष तथा आनन्दका एक मात्र स्थान प्रभुका लोक-परम पद-ही है । उसे न जानकर जीव अज्ञानवश विषयोंके सम्पादनके निमित्त ऐसे ऐसे काम्य कर्म करता है, कि उन्हें स्वयं ही करके रेशमके कीड़ेके

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—'राजन् ! गोपोंका सकल्प देखकर भगवान्ने सोचा 'इन्हें मेरे धामके दर्शन हों। विचारकर परम कारुणिक भगवान्ने उन गोपोंको अपने ज्ञानातीत धामके दर्शन कराये।'

सदृश उनमें फँस जाता है और फिर चौरासीके चक्करमें पड़कर संसारमें भटकता रहता है। यदि जीवको अपनी वास्तविकी गतिका ज्ञान हो जाय, यदि वह अपने यथार्थ स्वरूपको समझ जाय, तो फिर इन विषयोंके आनेसे से उसे न हर्ष हो न विषाद। अरे, यह संसार तो आगमापायी है। इसमें कौन-सी वस्तु स्थिर है। जो उत्पन्न हुई है वह नष्ट होगी। जो जन्मा है वह मरेगा। इन पंचभूतोंके बने पदार्थों में स्थायित्व कहाँ ये तो नाशवान् हैं ही। जो नाशवान् हैं वे सुखदायी हो नहीं सकते। सुख तो शाश्वत वस्तुमें है और शाश्वत है केवल प्रभुका धाम, प्रभुका नाम, प्रभुका रूप और प्रभुकी ललित लीलायें। जो इनके ही देखने, सुनने तथा कहने की इच्छा रखेगा, वह तो सुखी होगा, अन्यथा उसे दुःख ही उठाना पड़ेगा; *अतः अपनी कोई इच्छा हो भी तो वह प्रभुके* ही सम्बन्धकी हो और उसकी पूर्तिके लिये प्रभुसे ही प्रार्थना भी करनी चाहिये।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! नंदजीने द्वादशीव्रत किया था। कार्तिक शुक्ला त्रयोदशीके प्रातः उन्हें वरुणका दूत पकड़ कर लेगया। उसी दिन भगवान् कृष्ण वरुणलोकमें जाकर नन्दजीको लिवा लाये। आते ही उन्होंने गोपोंसे भगवान्के परमैश्वर्यकी बात कही। उसी समय सबके मनमें भगवान्के वैकुण्ठ धाम देखनेकी इच्छा हुई। उस दिन देर हो गयी थी। मैया यशोदा बहुत व्याकुल हो रही थीं; अतः सब गोप घर गये। वह दिन आनन्दोत्सवमें श्रीकृष्णकी महिमा वर्णनमें बीत गया। अब चतुर्दशीका दिन आया। सब गोपोंके मनमें एक साथ ही वैकुण्ठ दर्शनकी लालसा उत्कट हो उठी। सबने आकर श्रीकृष्णसे कहा—"कृष्ण! सुना है तुम्हारा लोक वरुणलोकसे भी सुन्दर है, तुम उसी लोकमें विराजते

हो। हमें अपना लोक दिखाओ।"

भगवान बोले—'अरे, तुम लोगोंने आज भाँग तो नहीं पी ली है। भैया मेरा लोक तो यही वृन्दावन है। जहाँ गौएँ हैं, मैया और बाबा हैं, ये गोपियाँ हैं, और तुम सब ग्वाल हो। जहाँ यमुनाजी हैं गोवर्धन पर्वत है वही वृन्दावन मेरा धाम है। तुम कैसी सिड़ी पागलपनेकी बातें कर रहे हो।" गोपों ने कहा—"अरे, भैया! तू हमें बहकाता क्यों है, हमने सुना है वैकुण्ठलोक बड़ा अच्छा है। वहाँकी भूमि रमणीक अमृतके वापी, कूप तड़ाग हैं। वहाँकी सरितायें दिव्यामृत बहाती हैं। उनके तट दिव्य मणियोंसे बने हैं। वहाँ कल्पवृक्षों के दिव्य बाग हैं। खगमृग पशु पक्षी जो भी वहाँ हैं, दिव्य चिन्मय है। वहाँके मंदिर चिंतामणियोंसे बने हैं। वहाँके निवासी शुद्ध सतोगुणी होते हैं। वहाँके लोगोंके वस्त्र आभूषण, मुकुट जो भी हैं सब दिव्य हैं।"

भगवान् बोले—"अरे, होंगे भैया दिव्य, दिव्योंमें क्या रखा है। ये सब वृन्दावनसे बढ़कर थोड़े ही हैं।"

गोप बोले—"अरे ना भैया! देख, अपने बापको तो तैंने वरुणलोकका ऐसा ऐश्वर्य दिखा दिया। अब हमारे लिये टाल मटोल करता है।"

यह सुनकर भगवान् हँस पड़े। उन्होंने सोचा—"देखो, यह जीव अज्ञानके कारण नाना भाँतिकी छोटी बड़ी कामनाओं के कारण तथा काम्य कर्मोंके कारण निरन्तर छोटी बड़ी ऊँची नीची योनियोंमें भ्रमण करता रहता है। कभी भौम स्वर्गके सुखोंको चाहता है, कभी पाताल स्वर्गके सुखोंको कभी इन्द्र लोक वरुणलोक कभी जनलोक कभी तपलोक और ब्रह्मलोक, इसी प्रकार एक लोकसे दूसरे लोककी इच्छा

हुए घूमता रहता है। मेरा जो परमपद है, जिसकी बराबरी कोई भी लोक नहीं कर सकता, उसमें मनको स्थिर नहीं करता। अपनी वास्तविक गतिको पहिचानकर उसीमे आरूढ हो जाय, तो इस जीवके समस्त शोक मोह तथा दुःखादि दूर हो जायँ।" यही सब सोचकर भगवान्ने कहा—"अच्छी बात है चलो, मैं तुम्हें वरुणलोकमे भी एक दिव्यलोक दिखाता हूँ।" यह कहकर उन्हें यमुना किनारे ले गये।"

यमुनाजीमें एक ह्रद था जिसका नाम 'ब्रह्मह्रद' था। भगवान्ने कहा—"तुम सब अपने वस्त्र उतारकर इस ह्रदमें घुस जाओ और डुबकी लगाओ। फिर देखना क्या चमत्कार दिखता है।"

यह सुनकर समस्त नन्दादि गोप उत्सुकता—पूर्वक अपने अपने वस्त्रोंको उतारकर उस ब्रह्मह्रदमें घुस गये। भगवान्ने कहा—"अब क्या देख रहे हो। मारो डुबकी।"

सबने भगवान्के कहनेसे जो डुबकी मारी तो सबके सब वैकुण्ठ लोकमें पहुँच गये। वह अपूर्वलोक था। वहाँकी शोभा अवर्णनीय थी। वहाँ सभी चतुर्भुजी थे। सबका मुख कोटि चन्द्रमाओंके सदृश प्रकाशवान् था। सबके सिरोंपर दिव्य मणियोंसे जटित परम प्रभावान् मुकुट थे। उन सबके भूषण वसन अनुपम थे। सभी प्रकारकी चिंताओंसे वे रहित थे। ब्रह्नंद सुखमें सभी नित्य निमग्न थे शंख, चक्र, गदा तथा पद्म धारण किये हुए थे। गोपोंने वहाँ बलरामजीके सहित श्री कृष्णको भी देखा। वे रत्नजटित मणिमय उच्चसिंहासनपर विराजमान थे। ब्रह्मादि देव इन्द्रादि लोकपाल सूत मागध वन्दियोंकी भाँति उनकी स्तुतिकर रहे थे। सवत्र चहल पहल आनंद और उत्सव हो रहा था। गोपोंको देखकर श्रीकृष्णने सिंहासनसे न उठे न जैसे ब्रजमें गद्गदकर छाती

से सटाकर मिलते थे वैसे मिले ही। गोपोंने देखा—"अरे भैया ! हमारे कनुआको यहाँ यह क्या-रोग हो गया। इसके तो दोके स्थानमें चार भुजाएँ हो गयीं। इसके सिरपर मोर पंखका मुकुट भी नहीं। लकुट भी नहीं, मुकुट भी नहीं, वंशी भी नहीं, गौएँ नहीं वृन्दावन नहीं। हाय ! हमारा कृष्ण यहाँ कैसा कंगाल बनगया। चमकीले पत्थर मुकुटमें लगा रखे हैं। गुंजाओंकी माला नहीं, काली कमरी नहीं। हमसे यह मित्रोंकी भाँति मिलता नहीं।"सारे, कहके बोलता नहीं। ऐसे वैकुण्ठको लेकर हम क्या करेंगे। वे सब तो मोर मुकुटधारी, वृन्दावनविहारी वंशीधारी द्विभुज श्रीकृष्णके उपासक थे। यहाँ उन्हें चतुर्भुज रूपमें देखकर डर गये इसके रूपमें जब व्यवधान पड़ जाता है, तो भक्तका चित्त विचलित हो जाता है। यद्यपि वह ज्ञानातीत लोक था। वह सत्य, ज्ञान, अनन्त और सनातन ब्रह्मज्योति स्वरूप धाम था। उसके दर्शन सभीको प्राप्त नहीं हो सकते। गुण सम्बन्धोंको सर्वथा त्यागकर मुनिगण एकाग्रचित्त होकर ही बड़े यत्नसे उसको प्राप्त करते हैं। गोप वहाँ जाकर आनंदमें निमग्न हो गये, किन्तु द्विभुज कृष्णको न देखकर तड़पने लगे। यद्यपि वह धाम ऐसा है. कि वहाँ जाकर कोई लौटता नहीं, किन्तु उन गोपोंके मनमें तो द्विभुज श्रीकृष्ण बसे हुए थे, उनका चित्त तो उनमें लगा था, अतः सर्वान्तर्यामी प्रभु उन्हें उनमेंसे निकाला। गोप जब उस ब्रह्महृदमेंसे उछले तो यमुना तटपर उन्हें त्रिभंग ललित गतिसे कदम्बके नीचे खड़े वंशीबजाते-मोर मुकुटधारी वनवारी-दिखायी दिये। तुरन्त जलसे निकलकर सबने उनकी चरणवन्दना की। वैकुण्ठलोकके दिव्य दर्शनोंसे सभीको संभ्रम हो रहा था। मूर्तिमान् वेद जिनकी स्तुति कर रहे थे, उन भगवान्को चतुर्भुज रूपमें देखकर सब आश्चर्य चकित हो गये थे

जब इन्होंने द्विभुज श्रीकृष्णको गोप वेषमें मुरली बजाते देखा, तो सभीको बड़ा हर्ष हुआ।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियों! भगवानने ऐसी मोहिनी मुसकानसे सबकी ओर देखा, कि वे सब वैकुण्ठकी बातें भूलकर श्रीकृष्णको पूर्ववत् अपना संगी सम्बन्धी समझकर प्राणोंसे भी अधिक प्यार करने लगे।"

छप्पय

द्विभुज कृष्ण नहिं देखि भई तिनकी विभ्रम मति।
लख्यो चतुर्भुज रूप भयो सबकूं विस्मय अति॥
ब्रह्मानन्द निमग्न गोप पुनि श्याम निहारे।
नटवर यमुना निकट निरखि सब भये सुखारे॥
यों वैकुण्ठ दिखाइकें, विस्मय कीयो दूर हरि।
नित नूतन अभिनय करें, छ्वललित अति वेष धरि॥

आगेकी कथा बयालीसवें [illegible] पढ़िये

शोक-शान्ति

(श्रीब्रह्मचारीजीका एक मनोरंजक और तत्व ज्ञान पूर्ण पत्र)

इस पुस्तकके पीछे एक करुण इतिहास है। मद्रासके सुन्दूर प्रान्तका एक परम भावुक युवक श्रीब्रह्मचारीजीका परम भक्त था। अपने पिताका इकलौता अत्यन्त ही प्यारा दुलारा पुत्र था। वह त्रिवेणी सङ्गमपर अकस्मात् स्नान करते समय डूबकर मर गया। उसके संस्मरणोंको ब्रह्मचारीने बड़ी ही करुण भाषामें लिखा है। पढ़ते-पढ़ते आँखें स्वतः बहने लगती हैं। फिर एक सालके पश्चात् उसके पिताको बड़ा ही तत्वज्ञानपूर्ण ५०।६० पृष्ठोंका पत्र लिखा था। उस लिखे पत्रको हिन्दी और अँगरेजीमें बहुत-सी प्रतिलिपियाँ हुईं. उसे पढ़कर बहुत-से शोक संतप्त प्राणियोंने शान्ति लाभ की इसमें मृत्यु क्या है इसकी बड़े ही सुन्दर ढँगसे मनोरञ्जक कथायें कहकर वर्णन किया गया है, लेखकने निजी जीवन के दृष्टान्त देकर पुस्तकको अत्यन्त उपादेय बना दिया है। अक्षर-अक्षरमें विचारक लेखककी अनुभूति भरी हुई है। उसने हृदय खोलकर रख दिया है। एक दिन मरना सभीको हैं, अतः सबको मृत्युका स्वरूप समझ लेना चाहिये, जिन्हें अपने सम्बन्धीका शोक हो, उनके लिये तो यह रामबाण औषधि है। प्रत्येक घरमें इस पुस्तकका रहना आवश्यक है। ८० पृष्ठकी सुन्दर पुस्तकका मूल्य ।=) पाँच आना मात्र है। आज ही मँगानेको पत्र लिखें, समाप्त होनेपर पछताना पड़ेगा।

पता—संकीर्तन-भवन, प्रतिष्ठानपुर झूसी, (प्रयाग)

महाभारतके प्राण महात्मा कर्ण

(तृतीय संस्करण)

अब तक दानवीर कर्णको कौरवोंके पक्षका एक साधारण सेनापति ही समझते होंगे। इस पुस्तकको पढ़कर आप समझ सकेंगे, वे महाभारतके प्राण थे, भारतके सर्वश्रेष्ठ शूरवीर थे, उनकी महामना, शूरवीरता, ओजस्विता निर्भीकता, निष्कपटता और श्रीकृष्णके प्रति महान् श्रद्धाका वर्णन इसमें बड़ी ही ओजस्वी भाषामें किया है। ३४५ पृष्ठ की सचित्र पुस्तकका मूल्य केवल २।।) दो रुपये बारह आने मात्र है, शीघ्र मँगाइये।

मतवाली मीरा

भक्तिमती मीराबाईका नाम किसने न सुना होगा। उसके पद-पदमें हृदयकी वेदना है अतःकरणकी कसक है ब्रह्मचारीजीने मीराके भावोंको बड़ी ही रोचक भाषामें स्पष्ट किया है। मीराके पदोंकी उसके दिव्य भावोंकी नवीन ढगसे आलोचना की है, भक्ति शास्त्रकी विशद व्याख्या है, प्रेम के निगूढतत्त्वको मनवी भाषामें वर्णन किया है। मीराबाईके इस हृदय दर्पणको आप देखें, और बहिन, बेटियों, माता पत्नी सभीको दिखावें। आप मतवाली मीराको पढते पढते प्रेममें गद्गद हो उठेंगे। मीराके ऊपर इतनी गंभीर आलोचनात्मक शास्त्रीय ढँगकी पुस्तक अभी तक नहीं देखी गयी, २२४ पृष्ठकी सचित्र पुस्तकका मूल्य २) दो रुपया मात्र है। मीराबाईका जहरका प्याला लिये चित्र बडा कलापूर्ण है।

भारतीय संस्कृति और शुद्धि

क्या अहिन्दु हिन्दु बन सकते हैं ?

आज सर्वत्र बलात् धर्म परिवर्तन हो रहे हैं। हिन्दु समाज से लाखों स्त्री, पुरुष सदाके लिये निकलकर विधर्मी बन रहे है, कुछ लोगोंका हठ है कि जो अहिन्दू बन गये वे सदाके लिये हिन्दु समाजसे गये, फिर वे हिन्दु हो ही नहीं सकते। श्रीब्रह्मचारीजीने पुराण, स्मृति इतिहास और प्राचीन ग्रन्थों-के प्रणामसे यह सिद्ध किया है, कि हिन्दु समाज सदा-से अहिन्दुको अपनेमें मिलाता रहा है। जबसे हिन्दु समा-जने अन्य सम्प्रादायवालोंके लिये अपना द्वार बन्द किया है, तभीसे उसका ह्रास होने लगा है। बड़ी ही सरल, सुन्दर भाषामें शास्त्रीय विवेचन पढ़कर अहिन्दुओंको हिन्दु बनाइये। अपने समाजकी उन्नति कीजिये। सुन्दर छपाई सफाई युक्त ७५ पृष्ठकी पुस्तक केवल ।-) पाँच आना मात्र।

पता—संकीर्तन-भवन, प्रतिष्ठानपुर झूसी, प्रयाग

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीब्रह्मचारीजी की कुछ अन्य पुस्तकें

जो हमारे यहाँ मिलती हैं ।

मेरे महामना मालवीयजी

और

उनका अन्तिम संदेश

अधिकारियोंने श्रीब्रह्मचारीजीको विजयादशमीके अवसर पर रामलीलाके जुलूसके सम्बन्धमें कारावास भेज दिया था। देशके कोने-कोनेसे उत्तरप्रान्तके प्रधान मंत्रीके पास सैकड़ों तार पत्र गये। रोग शय्यापर पड़े पड़े महामना मालवीय जीने प्रधान मंत्री और गृहमंत्रीको तार दिये। वे ही उनके अन्तिम तार थे, ब्रह्मचारीजीको छुडानेको उन्होंने श्रीपन्तजी और मिस्टर किदवईको जो पत्र लिखे वे ही अन्तिम पत्र थे। इन पत्रोंको लिखकर और ब्रह्मचारीजीको छुडाकर उसके आठवें दिन वे इस असार संसारसे चल बसे। इस पुस्तकमें उन पत्रोंके लिखनेका बड़ा ही सरस रोचक और हृदयग्राही इतिहास है ' महामना मलवीयजीके सम्बन्धके श्रीब्रह्मचारीजी महाराजके अनेकों सुखद संस्मरण है। अन्त में उनका पूरा ऐतिहासिक सन्देश भी है। पुस्तक बड़ी रोचक और ओजस्वी भाषामें लिखी गयी है कागजकी कमी के कारण बहुत थोड़ी ही प्रतियाँ छपी हैं। गुटकाके आकारके लगभग १२० पृष्ठ हैं। मूल्य ।) मात्र १) से कमकी वी० पी० न भेजी जायगी। स्वयं पढ़िये और मँगाकर वितरण कीजिये। समाप्त होनेपर द्वितीय संस्करण शीघ्र न हो सकेगा।

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीबद्रीनाथ-दर्शन

(श्रीब्रह्मचारीजीका एक अपूर्व महत्वपूर्ण ग्रन्थ)

श्रीब्रह्मचारीजीने चार पाँच पार श्रीबद्रीनाथजीकी यात्रा की है। यात्रा ही नहीं की है वे वहाँ महिनों रहे हैं। उत्तराखण्डके छोटे बड़े सभी स्थानोंमें वे गये हैं उत्तराखंड कैलास, मानसरोवर, शंतोपन्थ, लोकपाल और गोमुख ये पाँच स्थान इतने कठिन हैं, कि जहाँ पहाड़ी भी जानेसे भयभीत होते हैं। उन स्थानोंमें ब्रह्मचारीजी गये हैं वहाँका ऐसा सुन्दर सजीव वर्णन किया गया है, कि पढ़ते पढ़ते वह दृश्य आँखोंके सम्मुख नृत्य करने लगता है। उत्तराखण्डके सभी तीर्थोंका इसमें सरस वर्णन है, सबकी पौराणिक कथायें हैं। किंवदन्तियाँ हैं, इतिहास हैं और यात्रावृत्त है। यात्रा सम्बन्धी जितनी उपयोगी बातें हैं सभीका इस ग्रन्थमें समावेश है। बदरीनाथजीकी यात्रापर इतना विशाल महत्वपूर्ण ग्रन्थ अभी तक किसी भाषामें प्रकाशित नहीं हुआ। आप इस एक ग्रन्थसे ही घर बैठे उत्तराखण्डके समस्त पुण्य स्थलोंके रोमाञ्चकारी वर्णन पढ़ सकते हैं। अनुभव कर सकते हैं। यात्रामें आपके साथ यह पुस्तक रहे तो फिर आपको किसीसे कुछ पूछना शेष नहीं रह जाता। लगभग सवाचार सौ पृष्ठकी सचित्र सजिल्द पुस्तकका मूल्य ५) मात्र है थोड़ी ही प्रतियाँ हैं, शीघ्र मगावें ।